पंजाबी के चुने हुए हास्य-व्यंग्य

संपादक

सुरजीत

रचनाकार प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक : रचनाकार प्रकाशन
१५८६/१ई, नवीन शाहदरा
दिल्ली - ११००३२

प्रथम संस्करण : १६८६

मूल्य : तीस रुपये

मुद्रक : चोपड़ा प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

PUNJABI KE CHUNE HUYE HASYA-VYANGYA
(Selected Satires of Panjabi Literature) ed. *by* Surjeet

दो शब्द

जैसे हास्य-व्यंग्य के बिना जीवन नीरस, उकताहट-भरा और अरुचिकर हो जाता है, वैसे ही हास्य के बिना साहित्य अपूर्ण, नीरस और गैर-दिलचस्प हो जाता है। अतः हास्य-व्यंग्य भी साहित्य का अभिन्न अंग माना जाने लगा है।

पंजाबी साहित्य में हास्य-व्यंग्य बीसवीं शताब्दी की उत्पत्ति है, जिसकी नींव एस० एस० चरणसिंह शहीद ने रखी। उन्होंने १९२३ में 'मौजी' साप्ताहिक शुरू किया जिसमें एक काल्पनिक पात्र 'बाबा वरियाम' का सृजन किया जो कि इतना प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुआ कि लोग 'मौजी' पत्रिका की प्रतीक्षा करने लगे। ईशर सिंह ईशर भी 'भाइया' पात्र द्वारा काफी समय तक पंजाबी कविता के स्टेज पर सामाजिक कुरीतियों पर कटाक्ष करता रहा था। फिर हरिन्दर सिंह सूर ने अपने हल्के-फुल्के लेखों द्वारा पंजाबी हास्य-व्यंग्य की बुनियाद रखी।

पंजाबी हास्य-व्यंग्य के दूसरे दौर में स्व० कन्हैयालाल कपूर, डा० गुरनाम सिंह तीर, प्यारासिंह दाता और स्व० सूबा सिंह ने अपना योगदान दिया। कन्हैयालाल कपूर मूल रूप से उर्दू के लेखक थे, लेकिन उन्होंने शुरू में पंजाबी में भी लिखा और दो पुस्तकें भी छपीं। प्यारा सिंह दाता ने हास्य-व्यंग्य की कई पुस्तकें लिखीं। उन्होंने 'लक्ष्मी' और 'सैलानी' जैसे अमर पात्र पंजाबी साहित्य को दिये।

तीसरे दौर के लेखक हैं अनंत सिंह काबली, गुरदेव सिंह मान, दलीप सिंह जुनेजा, दलीप सिंह भूपाल और जे० एल० नन्दा—जिन्होंने पंजाबी हास्य-व्यंग्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

इसके अतिरिक्त जगदीश प्रसाद कौशिक, निरंजन शर्मा सेखा, शेरजंग जांगली, के० एल० गर्ग, स्व०, (प्रो०) बलवीर सिंह ने भी अपनी हास्य-व्यंग्य रचनाओं से पंजाबी साहित्य को समृद्ध किया।
भूषण, सी० आर० मोदगिल, हरबंस सिंह बिरक, तख्तसिंह कोमल, शमशेर सिंह साज, सुरजीत सिंह भाटिया आदि कई नए लेखक इस क्षेत्र में आ रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में यथासंभव पंजाबी से लगभग सभी आधुनिक हास्य-व्यंग्य की रचनाएं हिन्दी के पाठकों के समक्ष पेश करने का प्रयास किया गया है। विश्वास है यह प्रयास पसंद किया जाएगा।

— सुरजीत

अनुक्रम

जिंदा शहीद

प्यारा सिंह दाता

□

१६२६-३० की बात है। भगत सिंह की शहादत के बाद कांग्रेस आंदोलन जब पूर्ण यौवन पर था, तब पंजाब के गांव-गांव और शहर-शहर में राजनीतिक सम्मेलन बड़े जोर-शोर से हो रहे थे। उन दिनों एक शानदार सम्मेलन लेखक की जन्मभूमि—सय्यद कसरां, जिला रावलपिंडी मे हुआ, जिसकी अध्यक्षता का सौभाग्य आपके इस सेवक को प्राप्त हुआ। रेलवे स्टेशन से लेकर शहर तक सारा मार्ग झंडे, झंडियों और दरवाजों से ऐसे सुसज्जित किया गया था जैसे किसी महान व्यक्ति के दर्शन होने हों। फिर सारा इलाका ही इस सम्मेलन के जुलूस के समय उमड आया था। यहां सम्मेलन करने का विशेष कारण यह था कि प्रबंधक इस सोयी हुई धरती के बेटों को झकझोरकर जगाना चाहते थे और केवल इसी इलाके में से ५०० युवकों का जत्था र्योड़े के नमक पहाड़ों से मुफ्त नमक प्राप्त करने के लिए शांतिमय मोर्चे पर भेजना चाहते थे। उन्होंने बड़े-बड़े आदमकद पोस्टरों से सारे इलाके में इस सम्मेलन के संबंध में इतना प्रचार किया था कि जनता के उफनते सागर का कोई ठिकाना ही नही था।

इस सम्मेलन की अध्यक्षता का सम्मान लेखक को कैसे प्राप्त हुआ, यह बताने के लिए कुछ पहली घटनाओं का वर्णन करना जरूरी है।

खालसा हाईस्कूल, सय्यद से दसवीं पास करने के बाद मैं कई साल आवारागर्दी में रावलपिंडी, लाहौर और अमृतसर की गलियां नापता रहा। कोई काम-काज नही, कोई नौकरी नहीं, और रहने का कोई ठिकाना नहीं। एक दिन अचानक गुरु रामदास अस्पताल, अमृतसर में

काम कर रहे मित्र तख्त सिंह से मुलाकात हो गई। जब उसने मेरी बेकारी की ओर ध्यान दिया तो कहने लगा, "तू पढ़ा-लिखा और सूझवान नौजवान है, फिर तू क्रांति अखबार का सम्पादक क्यों नहीं बन जाता?"

मैं कितनी ही देर तक तख्त सिंह की ओर आश्चर्य से देखता रहा। फिर बोला, "तख्त सिंह क्यों गरीब आदमी से मखौल करता है। कहां क्रांति अखबार की एडीटरी और कहां मेरे जैसा आवारागर्द, बेकार और टुटपूंजिया, जिसने कभी चार अक्षर लिखने तो एक ओर रहे, अखबार भी कम ही पढ़ा है।"

"भई तू बात नहीं समझता, प्यारा सिंहा!" तख्तसिंह मेरे निकट हो रहस्यपूर्ण स्वर में बोला, "बात यह है कि क्रांति अखबार में लिखने वाले बंदे और होते हैं। उनका नाम अखबार में छापा नहीं जाता और जिन एडीटरों का नाम अखबार में छपता रहा है, उनके लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। यह तो सब कुछ सरकार को धोखा देने के लिए होता है। इसीलिए तो मैं तुझसे कहता हूं कि तू अखबार का एडीटर बन जा। करना-कराना कुछ नहीं। हां, तेरे राशन-पानी और कपड़े-लत्ते का प्रबंध दफ्तर की ओर से हो जाया करेगा।"

मुझे अब तख्त सिंह की बातें कुछ-कुछ समझ में आ रही थीं। मैंने दिल में सोचा, 'हमें तो सारा दिन आवारागर्दी ही करनी है, और अगर इस हालत में एडीटरी का सम्मान और खाने-पीने के अलावा जेबखर्च भी मिलता रहे तो हर्ज ही क्या है!' सो मैंने तख्त सिंह को 'हां' कर दी, और वह उसी क्षण मुझे क्रांति अखबार के पुराने तार घर वाले दफ्तर में ले गया। वहां उसने अपने परिचित एक बंगाली युवक से मेरे बारे में बात की। अस्तु, उसी समय एक फार्म पर मुझसे हस्ताक्षर करवा मुझे यह नौकरी दे दी गयी।

इसके बाद मेरा काम केवल दिन में एक-दो बार दफ्तर जाना होता था और बस। अखबार पहले ही चल रहा था और अब भी। हां, मुझे यह पता चल गया था कि भूतपूर्व सम्पादक के जेल चले जाने के कारण ही मुझे यह नौकरी मिली है, जिसमें सेवा के साथ-साथ मेवा भी मिलना जरूरी था।

उन दिनों 'क्रांति' में बड़े जोरदार लेख छपते थे। जब मैंने यह सेवा स्वीकार कर ली, तब से पहले से भी अधिक जोशीले लेख मेरे नाम से छपने लगे। मेरे नाम के साथ 'जिंदा शहीद' का खिताब अखबार वालों ने स्वयं ही जड़ दिया और मैं अपने हलके में उस दिन से इसी उपनाम से प्रसिद्ध हो गया।

कभी-कभी मुझे यह चिंता लग जाती थी कि कहीं भूतपूर्व डमी सम्पादकों की तरह मैं भी न धर लिया जाऊं, क्योंकि वास्तविक लेखक तो 'अंडरग्राउंड' रहते थे। उनका काम केवल लिखना होता था और जो सम्पादक के नाम मे कैद होते थे, उनको तो लिखना आता ही नही था। पर तख्त सिंह सदा मुझे सांत्वना ही देता रहा कि ऐसा समय कभी नही आने दिया जायेगा और इस प्रकार पूरे दो महीने बीत गये।

उन दिनों मैं, तख्त सिंह और हमारे दफ्तर का सारा कुआंरा स्टाफ खोती अहाते में एक होटल से खाना खाते थे। एक दिन दो ही ग्रास मैंने मुंह में डाले थे कि सामने दरवाजे मे से दो पुलिस के सिपाही और एक थानेदार आते दृष्टिगोचर हुए। तख्त सिंह ने उनको देखते ही मुझे कहा, "शहीद! इस खिड़की में से पिछली तरफ छलांग मारकर भाग जा, यह एडीटर की गिरफ्तारी के लिए ही आये लगते हैं।"

मैंने हाथ मे एक ग्रास लिए और दूसरा मुह में डाले ही होटल की पिछली खिड़की से छलांग मार दी। वह खिड़की बाहर की सड़क से काफी ऊंची थी। सो गिरता-पड़ता अपने कपड़े झाड़ता हुआ उठकर भागने ही लगा था कि पास खड़े दो यमदूत जैसे सिपाहियों ने मुझे काबू कर लिया।

सिपाहियों ने होटल के भीतर गये थानेदार को आवाज दी। सिपाहियो का शोर सुनकर थानेदार के साथ ही हमारे स्टाफ वाले और आस-पास के लोग आ इकट्ठे हुए और एक जुलूस की शक्ल मे पुलिस मुझे कोतवाली ले गई। रास्ते में मुझे लोगों ने फूलमालाएं पहनाईं और फोटो लिए। वही फोटो दूसरे दिन के अखबार ने बड़ी-बड़ी सुर्खियों के साथ छापी, "क्रांति अखबार के पन्द्रहवें सम्पादक को एक होटल मे से सैंकड़ों की

गि[illegible] पुलिस की फ़ौज ने घेरा डालकर बड़ी कठिनता से गिरफ्तार किया।

आखिर मुकदमा चला और मुझे छह महीने की कैद हुई। अब पता चला कि पिछले छह महीनों की हरामखोरी के बाद 'सेवा का मेवा' मिलना भी जरूरी था। मैं जितने समय जेल में रहा, बाहर अखबारों में मेरी बहादुरी के कल्पित कारनामों से पृष्ठ पर पृष्ठ काले होते रहे और जब मैं जेल से रिहा हुआ तो सचमुच मैं एक नेता बन चुका था। इतनी शोहरत देखकर किसका मन नाच नहीं उठता, पर मैंने तो कुर्बानी भी की थी।

मेरी रिहाई के समाचार से देश-भर में खुशियां मनाई गईं, कई जगह जुलूस निकाले गए और प्रशंसा के रूप में अभिनंदन और पुरस्कार पेश किए गए।

यह बात यहां तक ही सीमित नहीं थी। मेरी जन्मभूमि में तो मेरी बहुत बड़े नेताओं की तरह मान्यता होने लगी थी। उन लोगों ने उन दिनों एक राजनीतिक सम्मेलन की घोषणा की। मेरे गांव के लोगों को गर्व था कि उनका एक होनहार नौनिहाल इतने बड़े पद पर पहुंच गया है। अखबार की एडीटरी ही उन लोगों की नजरों में बहुत बड़ी बात थी, पर उसके साथ ही नेतागीरी तो सोने पर सुहागे का काम कर रही थी। वह गर्व में फूले नहीं समाते थे—गिरफ्तारी और रिहाई के समय की खींची फोटो मेरे वतन के घर-घर में फ्रेमों जड़ी हुई लटक रही थी। मैं उनके लिए एक हीरो था और मेरी पूजा कौम के महान् नेताओं के समान हो रही थी, पर मुझे इन बातों की बिल्कुल खबर नहीं थी कि सचमुच अपने इलाके में भी मैं इतना बड़ा कौमी नेता बन चुका हूं।

सम्मेलन की तिथि निश्चित हो जाने के बाद मुझे पोठोहार (रावलपिंडी, जेहलम का इलाका) के देशभक्त नेताओं की ओर से निमंत्रण-पत्र भेजा गया, "श्रीमान् जी, निम्नलिखित तिथियों पर हो रही पोठोहार पोलीटिकल कानफ्रेंस का उद्घाटन करने की कृपा करें। यहां की जनता आपके दर्शनों के लिए व्याकुल हो रही है, सो दर्शन देने के लिए अवश्य पहुंचें।"

इसके साथ ही लिखा हुआ था, "कानफ्रेंस का अध्यक्षीय भाषण भी

आपको ही करना होगा। जनता इस नाजुक समय मे आप [illegible] और बहादुर कौमी लीडर का नेतृत्व चाहती है।"

इस निमंत्रण-पत्र ने मेरी आंखें खोल दी। अब सचमुच मैं कौम का लीडर था। लीडरी का नशा मुझ पर ऐसा सवार हुआ कि उतरा ही नही, और आखिर तार द्वारा सूचना भेज दी कि अमुक गाड़ी से सम्मेलन में पहुच रहा हूं।

मेरी अध्यक्षता की सूचना क्षण-भर में सारे इलाके मे फैल गई और सब नर-नारी इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में थे कि कल एक महान् नेता के दर्शन उन्हे प्राप्त होंगे।

सम्मेलन मे सप्ताह-भर रह गया, तो मुझे ख्याल आया कि अध्यक्ष पद का भाषण भी तैयार करना है, सो उससे संबंधित 'क्रांति' की पिछली सब फाइलो को देख डाला और आखिर भाषण के लिए नोट तैयार कर लिए।

सबसे पहले मैं जनता को इन शब्दों से सम्बोधन करूंगा, "मेरे प्यारे हम-वतनो! मुसलमानो, हिंदू और सिख भाइयो और बहनो…!"

इसके बाद मैं जनता के सामने सरकार के अत्याचारों का एक ऐसा नक्शा खीचकर बताऊंगा कि किस प्रकार वह हमारे भाइयों पर जुल्म कर रही है और गोरे हजारों मीलों से यहां आकर हमारा खून चूस रहे हैं।

फिर एक उदाहरण दूंगा, "अगर हम सब हिंदुस्तानी मिल जाएं और इकट्ठे होकर एक जगह पानी पीकर कोसने के बजाय कुल्ला भी कर दें तो विदेशी गोरे उसके बहाव मे बहकर इंग्लैंड पहुंच जाएंगे।" इसके बाद कुछ क्षण खामोश रहना पड़ेगा, क्योंकि उपर्युक्त उदाहरण से जय-जयकारों की वह प्रतिध्वनि उठेगी कि आसमान कांप उठेगा।

इसके उपरान्त मैं बड़े जोश से कहूंगा, "कौम को अब ५०० नौजवानों की जरूरत है, जिनका नेतृत्व करने के लिए मैं तैयार हूं। अगर कौम की खातिर मेरा सिर भी चला जाए, तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा।"

मैं इन टिप्पणियों को पूरा एक हफ्ता घोटा लगाता रहा। किसी समय भाषण के भाग आगे-पीछे हो जाते तो उनको भी ठीक कर लेता। कितनी

बार एकात मे और कितनी बार अपने राजनीतिक गुरु तख्त सिंह के सामने अपने जबानी रटे भाषण का उच्चारण किया, और जब तख्त सिंह की ओर से भी स्वीकृति मिल गयी तो हृदय प्रसन्न हो गया।

निश्चित तारीख पर तख्त सिंह को साथ लेकर मैं अमृतसर से सय्यद को रवाना हुआ। मदरा स्टेशन से गाड़ी बदलनी पड़ती थी। जब गाड़ी बदलने के लिए हम दोनों पहली गाडी से उतरे तो कई मनचले नौजवान वहां भी हाजिर थे। उन्होने पुष्पमालाओ मे हमें लाद दिया और आखिर हम सय्यद वाली गाड़ी पर बैठकर सय्यद स्टेशन पर जा उतरे। वहां पर हजारो लोगो का हुजूम खड़ा नारे लगा रहा था, 'कौमी लीडर जिंदाबाद', 'जिंदा शहीद जिंदाबाद', 'पोलीटिकल कानफ्रेंस जिंदाबाद।'

मैं पहले ही पुष्पमालाओं से लदा हुआ था, पर अब नयी पहनाई पुष्पमालाओ से मेरी गर्दन टूटने को आ गई। मैं पहनी मालाएं उतारकर तख्तसिंह को पकड़ाता जाता था और जनता नई मालाओं से पुनः मुझे लादे जा रही थी।

स्टेशन से ही एक खुली कार मे हमें बैठाया गया। तख्त सिंह को लोगों ने धकेलकर परे कर दिया था। उसको बड़ी मुश्किल से ढूंढ़कर मैंने कार मे अपने साथ बैठाया। सारा रास्ता झंडियों और दरवाजों से सुसज्जित था। पहले दरवाजे पर मेरी आदमकद तस्वीर लटक रही थी और उस पर 'जिंदा शहीद गेट' लिखा हुआ था। अगले दरवाजे कई अन्य नेताओ के नाम से बनाए गए थे, पर हर गेट पर आदम-कद तस्वीर मेरी ही लगी हुई थी। हजारो का हुजूम नारे लगाता मुझे पंडाल की ओर ले गया।

सम्मेलन के पंडाल मे बहुत ठाट-बाट था। काफी ऊंची और सजी हुई स्टेज पर इलाके के प्रसिद्ध चौधरियों के बीच मुझे बैठाया गया। चारो ओर मोटो लगे हुए थे और उनमे से अधिकांश इस प्रकार के थे :

'जिंदा शहीद की कुर्बानियो पर हम गर्व करते हैं।'

'जिंदा शहीद ने अंग्रेजों को नाकों चने चबा दिये।'

'जिंदा शहीद अमर रहे।'

सबसे पहले स्टेज सेक्रेटरी उठे। उन्होंने गरजते हुए 'जिंदा शहीद'

की कुर्बानियों का वर्णन किया कि कैसे जिंदा शहीद जी कई साल अंग्रेजी सरकार को परेशान करते रहे, पर उसके हाथ न आए। आखिर जब पुलिस थक-हारकर बैठ गयी तो बहादुर शूर-वीरों की भांति इन्होंने अपने-आप को पेश कर दिया।

इस पर लोगों ने खूब तालियां बजाई और बहुत देर तक 'जिंदा शहीद अमर रहे' के नारे लगाती रही। स्टेज सेक्रेटरी ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "पोठोहार की धरती को कम गर्व नहीं कि उसने जिंदा शहीद जैसे बहादुर देशभक्त पैदा किए हैं जिनके सामने अंग्रेजों की जेलें तो क्या, उनकी फांसियों का भी कोई मूल्य नहीं।"

'फांसी' शब्द पर सेक्रेटरी ने तनिक अधिक जोर दिया और इधर मेरा कलेजा धड़कने लगा। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा जैसे स्टेज के सामने फांसी गाड़ी हुई है और यह सब लोग मेरे फांसी पर चढ़ने का तमाशा देखने आए हों।

और उधर सेक्रेटरी कह रहा था, "अब आप उस त्याग के पुंज और देश के महान् नेता के विचार सुनेंगे, तो आपको पता चलेगा कि उनमें अंग्रेजों के विरुद्ध कितनी जलन, कितनी घृणा है···"

इसके बाद फिर 'जिंदा शहीद जिंदाबाद' के नारे लगने लगे। इसके साथ ही 'सत श्री अकाल', 'अल्ला हो अकबर' और 'वंदे मातरम्' के आकाश-भेदी जयजयकार भी गूंज उठे।

इस समय मेरा सिर चकरा रहा था। मेरे सामने फांसी की रस्सी लटकती नजर आ रही थी। जैसे ही पुष्पमालाओं से लदे जिंदा शहीद जी को सेक्रेटरी ने बांह से पकड़कर भाषण के लिए खड़ा किया, तो ऐसे लगा जैसे वह शहीद जी को फांसी की ओर धकेल रहा हो। कभी तो पंडाल मेरे गिर्द चक्कर खाता जान पड़े और कभी मैं खुद उसके गिर्द चक्कर खाता जान पड़ूं और फांसी की लटकती रस्सी तो आंखों के सामने से ओझल ही नहीं होती थी।

मेरे पास बैठे तख्त सिंह ने मेरा पैर दबाया, जिससे मुझे महसूस हुआ कि अब बोलना चाहिए, पर बोला क्या जाए, यह भूल गया। आंखें बंद करके दिमाग पर जोर दिया तो याद आया कि हिंदू, सिख और मुसल-

मानों को एका करने के लिए जोर देना है। सो, बड़ी मुश्किल से घामे से मुंह से निकला :

"मुसलमानो !"

श्रोतागण आश्चर्य-चकित थे कि आज हमारे लीडर को क्या हो गया है ? तख्त सिंह ने नीचे से पुनः पैर दबाया, तो मैं हवास खो बैठा। सारा जोर लगाकर कहा :

"भाइयो, आप सब मुसलमान हैं !"

झट मुझे अपनी गलती का अनुभव हुआ कि इस प्रकार नहीं कहना चाहिए सो फौरन संशोधन करते हुए ऊंचे स्वर में चीखकर कहा, "मुसल-मानो, आप सब हिंदू हो, सब सिख हैं।"

इसके बाद मुझे याद आ गया कि नोट लिखे कागज की सहायता से क्यों न भाषण आगे चलाया जाए ? जेब में हाथ डाला तो वह कागज गायब था। फिर सोचा क्यों न गोरे वाली बात सुनाऊं। अब अपनी सारी बिखरी वृत्तियों को एकत्र करके मैंने कहना शुरू किया, *"अगर मैं अंग्रेजों* के साथ मिलकर कुल्ला कर दूं तो आप सब उसमे बहकर विलायत पहुंच जाएं।"

मुझे समझ नही आ रहा था कि मैं क्या बोल रहा हूं, पर इतना पता था कि मैं बोलता जा रहा हूं।

अब तक लोगों के धैर्य का प्याला पूर्ण रूपेण भर चुका था। उन्होंने कहना शुरू कर दिया; "बेवकूफ...पागल...अंग्रेजों का पट्ठा !"

और इधर तख्त सिंह निरंतर मेरा पैर दबाए जा रहा था और मैं गरजते हुए बोलता जा रहा था :

"अंग्रेज हमारे मित्र हैं। मैंने उनकी जेलें देखीं हैं। हम सब इकट्ठे होकर फांसी पर चढ़ सकते हैं।"

'फांसी' शब्द मुंह से निकलने की देर थी कि फांसी की रस्सी पुनः सामने लटकती हुई नजर आई जो कुछ क्षणों के लिए आंखों से लोप हो गई थी।

मैं चीखकर बोला, "वे लोग पागल हैं जो मुझे फांसी पर *लटकाना चाहते हैं। मैं मूर्ख नहीं, मैं पागल नहीं, मैं जिंदा शहीद हूं...*

मैं···मैं।"

और जबान हकला गई। तख्त सिंह लगातार मेरा पैर दबा रहा था। ऐन उस समय श्रोतागण में से किसी ने मुझे एक छोटा-सा पत्थर दे मारा। बस, फिर क्या था, पहल करने की देरी थी कि रुका बांध टूट गया। टूटे जूते, कागज के टुकड़े, मिट्टी और पत्थर के टुकड़े, आदि स्टेज पर बरसने लगे। जो 'जिंदा शहीद' कुछ क्षण पहले जनता की आंखों का तारा था, उसके मुंह, सर, कान और नाक से खून बह रहा था। मुझे उस समय कुछ सूझ नहीं रहा था। उसी क्षण किसी अदृश्य शक्ति ने मेरे कान में फूंका, 'शहीद, भाग जा!' बस फिर क्या था, कदम भर स्टेज की पिछली तरफ की कनात से छलांग लगाई और सीधा बाहर। आगे पुलिस पंडाल को चारों ओर से घेरे खड़ी थी, और उसको सम्मेलन खत्म होते ही मुझे गिरफ्तार कर लेना था, पर मेरी यह हालत देख पुलिस ने रास्ता दे दिया। मेरे पीछे जनता का उफनता समुद्र था। लोग गालियां देते और लानतें उछालते मेरे पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। पुलिस उनको रोक रही थी कि एक बेगुनाह आदमी को क्यों तंग करते हैं। मैं हांफता हुआ सीधा स्टेशन पहुंचा। मेरी खुशकिस्मती कि वह गाड़ी जिस पर मैं जलूस निकलवाने आया था, अपने अंतिम स्टेशन 'भौण' से वापस लौटकर मंदरा की ओर जाने को तैयार खड़ी थी। मैं उसमें बैठ गया और मेरे बैठते ही गाड़ी सीटी बजाकर चल पड़ी।

चन्नो का काका

डा० गुरनाम सिंह तीर

☐

बहुत वर्षों के बाद अपनी ससुराल गया। घर का मुझे पता था। इसलिए अधिक पूछताछ करने की जरूरत नहीं पड़ी। मुझसे कुछ दिन पहले मेरा लड़का अपनी ननिहाल रहकर गया था। वह भी दो-चार दिन के लिए गया और फिर लौट आया। अपनी ननिहाल के चौबारे में बिस्तर बिछाकर पढ़ता रहा। किसी को मिला नहीं। गांव में न सिनेमा-घर था, न कोई थियेटर, न कोई क्लब और न कोई लाइब्रेरी थी। इसलिए काका (लड़का) यह बहाना करके आ गया कि मैं फिर जल्दी ही आऊंगा। मेरी परीक्षा है। इसलिए जाना जरूरी है। मुझे इन बातों का कुछ पता न था।

जब मैं ससुराल पहुंचा, तब मेरी सास की जेठानी माई भागां मुझे ससुराल की हवेली के दरवाजे पर मिली। उसे तो चाव चढ़ गया। मैंने उसको माथा टेका, तो उसने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए सारे मुहल्ले में यह कहते हुए मुनादी कर दी, "लो री, चन्नो का काका आ गया है।" मेरी बीवी को मेरे ससुराल वाले 'चन्नो' कहकर बुलाते थे। मैं बड़ा हैरान हुआ कि मैं तो चन्नो का घरवाला हूं, चन्नो का काका नहीं हूं, फिर इतनी गलतफहमी कैसे हो गई?

माई ने मुझे स्पष्टीकरण करने ही नहीं दिया। वह शोर मचाए जा रही थी, "लाओ री दूध का छन्ना, दो री पंजीरी की कटोरी, बनाओ री कड़ाहप्रसाद, काका मुश्किल से आया है। यह निर्मोही बीस दिन हुए लारा लगाकर चला गया था। मैं कहती रह गई, काका परीक्षा की तैयारी यहीं रहकर कर ले। अच्छा खाने-पीने को। घर में भैंसें, घोड़े और बैल हैं।

इनके होते हुए आंगन भरा-भरा लगता है । तेरा यहां दिल क्यों नहीं लगेगा, पर यह शहरी हो गए हैं शहरी ! जो लोग शहर में जा बसें, चाहे कुछ खाने को मिले, न मिले, लेकिन रहेंगे वहीं । इस दुष्ट को मैं कह रही थी—तू न जा, न जा, हमारा दिल नहीं लगेगा, पर इसने एक न मानी । झट तैयार हो गया और पट से चला गया । हम देखते ही रह गए । वह दिन जाए और यह दिन आए, प्रतीक्षा करते-करते आंखें थक गईं । और बता काका, तेरी मम्मी तो ठीक थी न ? तुझे कितने दिन की छुट्टी दी ? अपने बाप को भी कहना था कि वह भी मिल जाए । इतना निर्मोही क्यों हो गया है ! हाईकोर्ट का वकील क्या बना है, बस सगे-संबंधी ही छोड़ दिए । वहां जाओ, तब भी खुलकर बात नहीं करता । हर समय मुकदमों की पड़ी रहती है । इतना धन क्या करेगा ?"

मैं सोच रहा था कि बूढ़ी को कहूं तो क्या कहूं, पर वह मुझे बोलने का अवसर ही नहीं दे रही थी । जब मैं कुछ कहना चाहता, वह झट कोई नयी बात शुरू कर देती । हमारे बाप-बेटों की शक्ल काफ़ी मिलती-जुलती थी । दाढ़ियां भी एक जैसी थी । चेहरा-मोहरा भी एक-सा था । कद-काठ भी एक-सा था । पढ़ने के लिए ऐनक हम दोनों ही लगाते थे । इसलिए जो हमें कभी नहीं मिला था, या नहीं जानता था, उसको यह अक्सर गलत-फ़हमी हो जाती थी कि हम छोटे-बड़े भाई हैं, पर माई भागां ने तो सारे रेकार्ड ही तोड़ दिए थे । वह मुझे 'चन्नो का काका' बनाए बैठी थी । उसको देख-सुनकर कुछ और लोग भी आ गए और मेरे गिर्द इकट्ठे हो गए । मैंने उनको भी 'सत श्री अकाल' कहा, पर उनमें से भी किसी ने यह न पहचाना कि मैं चन्नो का काका हूं कि घरवाला । मैं पानी-पानी हो रहा था, पर माई भागां बराबर कहे जा रही थी, "दोहते बड़े लापरवाह होते हैं । कोई कितना तड़पे, कितना कुछ करे, इनको कुछ याद नहीं रहता ।"

फिर मेरी ओर देखकर कहने लगी, "काका, तेरे बाप को तो देखे हुए एक मुद्दत ही हो गई है । चार फेरे लेने के लिए आया था, और चला गया । इससे ज्यादा उसने इस गांव के साथ कोई रिश्ता नहीं रखा । लोगों के भी जामाता आते हैं । मिलकर जाते हैं, पर तेरा बाप तो बेहद ही

निर्मोही हो गया है।"

मैं बार-बार सोच रहा था कि उनकी गलतफहमी कैसे दूर करूं, पर ससुराल वाले अपनी रट लगाए जा रहे थे। माई फिर कहने लगी, "चन्नो हर साल तीज पर आती है। हमारी आखों में ठंड पड़ जाती है। हमारी चन्नो तो सचमुच चन्नो (चांद) है। पूर्णमासी वाले दिन जन्मी थी। इसीलिए चौदहवी के चांद से चार रत्ती ऊपर है। उसके रूप की दूर-दूर तक धूमें पड़ी हुई थी। राजे-महाराजे उसका रिश्ता मांगते थे, पर जहां संयोग होते हैं, वहां ही विवाह होता है। तेरे बाप के साथ तो उसका संबंध परलोक हो से लिखा हुआ था। हम उसको और कहां ब्याह सकते थे! चन्नो गाव से दसवी पास करके गई थी। शहर जाकर दस जमातें और पढ़ गई। अब सुना है, प्रोफेसरनी लगी हुई है। तेरे जितने लड़के-लड़कियों को पढ़ाती है।"

मैंने कुछ हिम्मत कर कहा, "मां जी, वह तो मुझे भी पढ़ाती है!"

माई मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहने लगी, "पुत्तर! तू भाग्यवान् है। जितना उससे पढ़ लेगा, उतना ही सुखी रहेगा। चन्नो तो उड़ते पंछियों को पढ़ा सकती है। तू तो फिर मुख से उसका पुत्तर है!"

'पुत्तर' वाली बात बड़ी चुभती थी। मैंने दो-तीन बार होले-होले कहा, "मा जी, मैं चन्नो का काका नही हूं।" पर मेरी बात किसी ने न सुनी। वह कहती जा रही थी, "काका, जैसी चन्नो, वैसा ही साहब, जैसा साहब सिंह और चन्नो, वैसा ही तू। हमने तो कई बार लिखा है, भई, हमें सारे परिवार की तस्वीर खिचवाकर ही भेज दे। पर हमारी इतनी बात भी किसी ने नहीं मानी।"

मैं चुपकर के सुनता गया और वह कहती गई, "चन्नो की तो कभी न कभी कुशलता की चिट्ठी आ जाती है, पर तेरे बाप ने कभी कुछ नहीं लिखा। लोगों के भी दामाद हैं, पर इतनी लापरवाही कोई नहीं करता।"

तीन-चार और घरों की लड़कियां वहां आ गई और उनके पूछने से पहले ही माई भागां ने 'चन्नो के काका' के बारे मे ऐसे ढंग से जान-पहचान करानी शुरू की कि किसी को शक ही न रहने दिया कि मैं चन्नो का काका हूं कि काके का बाप। अन्य बूढ़ियों ने भी उसी स्वर में नोंक-

झोंक शुरू कर दी। एक कहने लगी, "हमें तो यह काका चन्नो और उसके बाप से भी अधिक अच्छा लगता है, जो कम से कम हमें मिलने तो आया है। शहर जाकर चन्नो मेम साहब बन गई है और घर वाला तो पहले ही अपने-आप को साहब कहलवाता था।"

दूसरी कहने लगी, "चन्नो के तो साहब का नाम ही साहब सिंह है। यों तो वह काके जैसा ही सिख है।"

तीसरी कहने लगी, "अरी, सिख कौन-से साहब नहीं होते। असली साहब तो होते ही वह हैं, जिनके पास चार एकड़ जमीन हो। केवल टोप पहनकर साहब थोड़े ही बन जाते हैं।"

चौथी बोली, "अब तो बहन, साहब ही वही बनता है जिसका न आगा, न पीछा, न घर, न घाट, न जमीन, न जायदाद, बस वोटें लीं, झंडी वाली कार में बैठे और साहब बन गए। न जात, न पांत, न ऊंच, न नीच, न आगा, न पीछा, न घर, न घाट बस निरे साहब के साहब!"

मैं कौओं के घेरे में उल्लू की तरह कभी किसी की ओर देखूं, और कभी किसी की ओर, पर मुझे कुछ न सूझे कि मैं कहूं, तो क्या कहूं, बल्कि उनकी बातें सुन-सुनकर मेरा मन पक्का होता जा रहा था कि मेरी कुशलता चुप रहने में ही है।

चर्चा चलती गई। चन्नो के काके और उसके बाप को छोड़कर बुढ़ियों ने मिट्टी के तेल, डीजल, ट्रैक्टरों, ट्यूबवेलों, बिजली और पानी की बातें शुरू कर दीं। धीरे-धीरे उनकी वार्ता गुस्से का रूप धारण करती गई। अंत में एक ने यह कह दिया, "एक दिन ऐसा जरूर आएगा, जब गांव के लोग शहरियों से खाए-पिए का हिसाब मांगेंगे।"

मैंने उनका गुस्सा ठंडा करने के खयाल से कहा, "शहरियों के खाए-पिए का जब हिसाब होगा, तब देखा जाएगा, इस समय तो मुझे कुछ खाने-पीने को दो।"

मेरी बात सुनकर सभी खिलखिलाकर हंस पड़ीं और एक बूढ़ी उठती हुई कहने लगी, "अरी, केवल गपौड़ ही हांके जाओगी, काके को कुछ खिलाओ-पिलाओ भी!"

"मां बलिहारी!" माई भागां ने कहा, "पुत्तर, मैंने तो पहले ही तेरे

लिए दूध का छन्ना मंगवाया हुआ है । वह पी लो अब । तेरे मामे आ जाते हैं। फिर तेरे लिए कुक्कड़ (मुर्ग) काटेंगे । साग चूल्हे पर रखा हुआ है । और जो-जो कुछ तू कहेगा, तैयार करवा देंगे । ईश्वर की कृपा से तेरी मामी बहुत सुदर कड़ाह-प्रसाद (हलुआ) बनाती है ।"

दूध का छन्ना आया । मैं वह सेवन कर गया । मेरे गिर्द घेरा कुछ ढीला हुआ । दो-तीन बुढ़ियां उठकर अपने-अपने घर चली गईं । मेरा जी चाहे कि मैं सारा भेद खोल दू कि इतने में चन्नो के दोनों भाई खेत से लौट आए । इससे पहले कि मैं उनको 'सत श्री अकाल' कहता, माई भागां ऊंची आवाज से कहने लगी, "अरे जै सिह, वे तेजिया, इधर आओ । देखो, चन्ने का काका आया है।"

वह भागकर मेरी ओर आए और मेरे सिर पर हाथ फेरकर कुछ ठिठक गए। जय सिह कहने लगा, "ताई, तू क्या कह रही थी, चन्नो का काका आया है ? वह कहां है ?"

बूढी जोश में आकर कहने लगी, "अरे, तुम्हें रतौंधी हो गई है। तुम्हें दिखाई नही देता । अभी कौन-सी इतनी रात पड़ गई है । यह मेरे पास चन्नो का काका नही बैठा हुआ, तो यह और कौन है ?"

वे दोनो हस पड़े और जय सिह कहने लगा, "ताई, यह चन्नो का काका नहीं, चन्नो के काके का बाप है । यह साहब सिह है । काका तो बीस दिन हुए, तब आया था ।"

"हाय, मैं मर जाऊं, मैं तो इसको चन्नो का काका ही समझती रही। यह भी तब से मजा लिए जाता है। कुछ मुंह से तो बोलता ही नही ।"

मैंने कहा, "मा जी, मैंने कई बार बोलने का प्रयत्न किया, पर आपने मुझे बीमा एजेंट और विरोधी वकील की तरह बोलने का मौका ही कहा दिया ।"

माई अपने-आप पर हंसती हुई कहने लगी, "वाहे गुरु की तो काका, तुम्हारे पर बहुत कृपा है । जैसा पुत्तर, वैसा बाप, और दोनो से ज्यादा सुदर हमारी चन्नो ।"

मैंने फिर हसकर कहा, "मां जी, यह सब आपकी चन्नो की मेहर- [illegible] हैं, नही तो इतने सुंदर लड़के-लड़कियां कहा से होने थे ! सारे

बच्चे देखने मे उसके बहन-भाई लगते हैं।"

"ठीक है, पुत्तर, ठीक है !" माई ने समझौता करने वालों की तरह कहा, "बच्चे तो सारे ही सुंदर हैं, पर काका करमजीत और तू तो देखने मे सगे भाई लगते हो ।"

माई की ओर से तो छुटकारा मिल गया, पर मुहल्ले की नौजवान लड़कियां, जो ज्यादातर मेरी सालियां लगती थी, उनको जब पता चला कि मैं चन्नो का काका नही, घरवाला हूं, तो उन्होंने आकर मेरा घिराव कर लिया। एक कहने लगी, "पल्ले न कार, न मोटर, आ गया है वसों पर चढ़कर ! ऐसा दामाद हमारे गांव वालों ने क्या करना था !"

दूसरी बोली, "यह अपनी अटैची-केस सिर पर रखे आ रहा था, मुझे तो लगता है, चंडीगढ़ के स्टेशन पर कुली लगा हुआ है।"

तीसरी कहने लगी, "कुली हो चाहे वकील, हमने तो लड्डू खाने हैं। कितने सालों के बाद हमारा जीजा आया है, और अरी, आया भी कुछ भेस बदलकर !"

मैंने कहा, "मैं तो कोई भेस बदलकर नहीं आया। जैसा था, वैसा ही आ गया हूं, पर तुम लोगों की नजरों में कुछ फर्क आ गया है।"

माई भागां ने धीरे से कहा, "अरे भाई, फर्क और गलतफहमी कैसे दूर हो। चन्नो पहले से ज्यादा मुटियार हो गई है और तू ईश्वर की दया से काके जैसा लगता है।"

एक अन्य साली, जो बहुत तेज-तरार थी, कहने लगी, "यह शहरिये कहां बूढ़े होते हैं। इनको तो खाने को गोभी मिलती है, गोभी। हमारे लिए तो रेवड़ियां भी लेकर नही आया।"

मुझे घिरा देखकर छोटा साला मेरी मदद को आया, और कहने लगा, "लड़कियो, जीजा तुम्हारे लिए बहुत कुछ लाया है। मैंने देखा है, दो थैले मिठाई और फलो के भरे हुए हैं। जरा आराम करने दो। फिर तुम्हें बांटेंगे।"

एक और ने तीखी नजरें फेंकते हुए कहा, "जब तक बाजार में दाढ़ियां रंगने की शीशियां मिलती रहेंगी, बाप-बेटों की गलतफहमी हो[illegible]।" और फिर सारी लड़कियां खिलखिलाकर हंस पड़ी।

ये काम टालने वाले

सूबा सिंह

□

वास्ता पड़ने पर इन्सान का पता चलता है। हाथ चाहे कोमल हों, लेकिन वही जान सकता है, जिसको लगे ! कमजोर कर्मचारियों के साथ भी वास्ता पड़े तो एक बार आदमी के कपाट खुल जाते हैं। जहां आजकल आम लोगों का नारा आराम हराम है, वहां ये बड़े गर्व से छाती निकालकर कहेंगे कि हमे आराम नहीं काम हराम है।

मेरा दुर्भाग्य कह लें या सौभाग्य, मुझे ऐसे कलाकारों के साथ हर रोज वास्ता पड़ता है। जैसे किसी ने किसी का सिर लकड़ी की डाल या भारी पत्थर से फोड़ दिया, वैसे ही इन कलाकार कामचोर कर्मचारियों को काम बताकर ख्वार होना है। ये सौ-सौ बहाने, हजार-हजार टाल-मटोल के पैंतरे करेंगे और मजाल है तिनका तोड़कर भी दोहरा कर जाएं।

ऐसे महाशयों में मेरा एक साथी मनोरंजनलाल है। वह दफ्तर में घुसते ही टोपी उतारकर मेज पर फेंकेगा, दीवार वाले आईने के सामने कभी दायीं बांछें पीछे खीचेगा, कभी बायीं। उसके बाद दोनों हाथों की उंग-लियों से नाक के गिर्द आंखों के नीचे पड़ी हुई लकीरों को मसलेगा। फिर बांहें ऊपर उठाकर अंगड़ाई लेगा, जम्हाई लेगा और फिर हमारी ओर मुंह फेरकर कहेगा, आज तो काम करने का मूड नहीं। सारी रात बारिश होती रही। कभी चारपाई बाहर बिछाएं, कभी अन्दर। न नींद आई, न चैन आया, और अब सिर भारी-भारी लगता है। काम का मूड कहां से बने ?"

यह घोषणा करने के बाद वह चपरासी पर गजरेगा, "पानी का

एक गिलास लाकर रख। मेज साफ नहीं की। कुर्सी पर बालिश्त भर [illegible] कमीज का कफ देख, कितना मैला हो गया। क्या दफ्तर है ! कितनी गर्द ! दो दिन कमीज पहनो, कीचड़ जैसी हो जाएगी। काम का मूड फिर कैसे बने !"

अभी चपरासी पानी को नहीं गया होगा कि वह आवाज देगा, "यह पकड़ आठ आने। चाय का पूरा आधा सेट ले आ। चार प्याले निकल आएं। कोई आ ही जाता है।" इस पर वह पूछेगा, "पहले चाय लाऊं या पानी ?" मनोरंजनलाल यह सुनते ही पटाके की तरह फट जाएंगे, "दिमाग न चाट ! जो चीज मिले, ले आ ! पानी भी पिएंगे और चाय भी। काम-काज किसी ने क्या करना है ! काम का कोई मूल्य नहीं। यहां तो चपरासी भी लाट साहब हैं। इनका सुनहरी असूल यह है कि हुक्म टालना नहीं, काम करना नहीं। काम का कोई मूल्य नहीं। काम करके बहुतेरा देख लिया। काम करने वालों ने कौन-सी हवेलियां बना ली हैं और हमारी रह गई है !" वह हम सबसे अपनी बात का हुंकारा लेगा।

चाय आ जाने के बाद लगभग आधा घंटा उसका चाय के बारे में भाषण जारी रहेगा, "चाय लोगों को न बनानी आती है न पीनी। एक गिलास पानी का और पाव-भर पत्ती। पी लो तो रस्सी डालकर खींचने पर भी पलकें नीचे न आएं। फिर चुस्कियां भरेंगे। शोर मचाएंगे। किसी को खाक पता नहीं कि चाय कैसे पी जाती है। दूसरे देशों में चाय बनाना, और मेज पर रखने और पीने के सलीके के बारे में तीन-तीन साल का कोर्स होता है स्कूलों में !"

चाय खत्म करने के बाद वह मेज पर पड़े हुए कागजों को इधर-उधर उलट-पुलटकर बड़बड़ाने लग जाएंगे, "मार डाला है काम ने ! कागजों के पुलन्दों के पुलन्दे इधर फेंकते जाएंगे। नौकरी कैसी कर ली, बेगार में पकड़े गए हैं। यह केस फिर मेरे माथे पर दे मारा है। बीस बार वापस की है। फिर यहां पर भेज दी !" और यह कहकर ठहाका मारकर हंस पड़ेगा। और फिर वह हसरत-भरे लहजे में अपने काम के अनुभव यों पेश करेगा, "पार्टिशन से पहले जिला कचहरी में असला क्लर्क

लगे थे। हर ऐरा-गैरा लाइसेंस मांगता था। भीड़ लगी रहती। 'बाबू जी, बाबू जी' की दुहाई होती रहती। हम हर एक को रेस की तरह झाड़-झाड़कर फेंकते थे। उन्होंने पैसे भी देने, याचनाएं भी करनी। हमें मालूम था, यह लोग फसने पर ही मार खाते हैं। जो किसी ने देना, ले लेना। साल-भर में सभी कसरें पूरी हो जातीं। पर काम भी करते थे जान मारकर! कमाई हो तो काम भला कोई कैसे न करेगा? यहा भी अगर कमाई वाली सीट मिले तो फिर देखें हमारी फुर्ती!"

इस तरह डेढ़ बज जाएगा। आधा घटा छुट्टी और दो बजे वापसी। आते ही चपरासी को हुक्म मिलेगा, "जा नीचे से कार्ड ले आ। पाच लिफाफे भी। मेरे मित्र की जर्मनी से चिट्ठी आई थी। यहा फुरसत ही नही मिलती क्या करें! और क्या ना करें। जवाब किस समय लिखें।" और इसके बाद वह किसी अंग्रेज अफसर की कथा शुरू कर देगा :

"मुकाबला नही अंग्रेज अफसरों का! कप्तान स्कालर के साथ काम करने का जो मजा था, वह फिर नही मिला! बडा रंगीला आदमी था। जब मौसम थोड़ा-सा सुहावना होता, उसने फौरन आवाज देनी, 'मनोरंजन लाल, इधर आओ! फाइलों मे मत फंसो, मर जाएगा। देखो! हवा कैसी ठण्डी माफिक चलता है।' आम मंगवा लेने और बढ़िया सिगरेटें पेश करनी और मेमों के किस्से शुरू कर सारी थकावट उतार देनी! पर अब तो काम से बुरा हाल है!"

इस दास्तान-गोई मे पाच बज आते है। वह टोपी सिर पर रखकर कमरे से बाहर निकल जाएगा।

उसका मेज गजे के सिर की तरह साफ-चिकना, पर उसके नीचे रद्दी की टोकरी ठसाठस भरी होती है।

एक और काम टालने मे उस्ताद के साथ मेरा वास्ता पडा था पिछले साल! मोटी-मोटी आंखें! भयानक चेहरा! हट्टा-कट्टा शरीर होने के कारण उसकी हर बात की हिमायत में सिर हिलाना पड़ता था। वह कमरे मे कंधे से ट्रांजिस्टर लटकाए हुए आता।

कुर्सी पर बैठकर, उसने सामने पड़ी फाइलो को जोर-जोर से मेज पर मारकर झाड़ना और फिर इरशाद करना :

"हर फाइल पर 'तुरन्त' का पुर्जा लगाकर भेजते जाएंगे। कोई पूछे, क्या बाढ़ आ गई! छत गिर गई या लड़ाई शुरू हो गई! आखिर हम मशीन तो नहीं, छह महीने अपने पास वह कागज दबाए रखेंगे, फिर हमारी ओर भेज देंगे। किसी दिन फाइलों के नीचे प्राण निकल जाएंगे, फिर हमें मरे हुए चूहे की तरह पूंछ पकड़कर बाहर फेंक देंगे! क्यों बाबू खुशहाल चन्द जी, ठीक कहा है न मैंने?"

इसके बाद वह क्रिकेट की बात शुरू कर देता, "कप्तान पटौदी ने शानदार सेंचुरी मारी। कामेंटरी सुनकर आनन्द आ गया है!" हेड क्लर्क ने यह सुनकर थोड़ी-सी नजरें तल्ख करनीं तो उसने पैंतरा बदलना, "रात तो खुशहाल चन्द जी, भाग्य बलवान था, तो बच गए। भगवान ने रख लिया, नहीं तो हमने कहां आना था आज!"

"क्यो, क्या हुआ?"

"होना क्या था! सर्कस देखने गए थे। शेर काबू से बाहर हो गया। पिंजरे में से निकलते ही वह दहाड़ा और रिंग मास्टर की गर्दन को पकड़ लिया। भगदड़ मच गई। बच्चों की चीखें, औरतों का शोर, भागते हुए रास्ता न मिले! शेर भी भला मानुस निकला, बस रिंग मास्टर के चिथड़े करके, खुद ही पिंजरे में जा घुसा!"

"चलो शेर तो पिंजरे में चला गया, अब हम भी काम की ओर जाएं!" हेड क्लर्क मनसाराम ने कहना।

"वाह जी वाह! काम को छोड़ो और कोई काम की बात करो बाबू जी! तरक्की लेनी है तो खुशामद सीखो। क्या लेना है काम करके! पहले क्या कमा लिया है आपने! सेहत आपकी नहीं। चुपड़ी रोटी आपको नहीं पचती। आंखें आपकी खराब हो गई हैं। मुझे तो आप पर तरस है। कागजों में डाक्टर ने कल ही कहा था, खुनाक (टांसिल) के कीटाणु हैं, खुनाक के! यह सब खुनाक से मरेंगे काम करने के शौकीन!"

यह कहकर उसने मूंछों को ताव देना और फिर बड़ी विनम्रता से कहना, "बाबू जी, पान खाएंगे? आपकी कसम मोड़ वाला जामू बड़े स्वादिष्ट पान लगाता है। खाएंगे तो हमें याद करेंगे। मजाल क्या, कत्था कम-ज्यादा लग जाए। बाबू जी, ठाकुरदास होता था न! एफ०सी० ब्रांच वाला!

वह दिन में डेढ़ सौ पान खा जाता था। हमने क्या खाने हैं !" पान मुह में फंसाकर उसने ट्रांजिस्टर का घोड़ा मरोड़ देना। गाना शुरू हो जाना— "इश्क इश्क हां इश्क इश्क..." और उसने 'हाल' खेलने वालों की तरह खुशी में और मस्ती में झूमने लगना।

उसके बाद दफ्तर की जल्दी की चिट्ठियों पर "कागज नहीं मिले' लिख-लिखकर चपरासी को आवाज लगानी, "सन्तू ! इनको उठा ले जा और डाक वाले को पैकड़ा दे और चाय का सेट ले आ ! प्यालियां अफसरों वाली लाना। आज मैं सुपरिटेंडेंट साहब को अपने हाथ से चाय बनाकर पिलाऊंगा।"

फिर भला उसको काम करने को कौन कह सकता था ?

सुपरिटेंडेंट साहब ने इस पर घी की तरह पिघल जाना।

ऐसी साअदतमंदियां अब कहां। जब मैं हेडक्लर्क होता था डिप्टी कमिश्नर के दफ्तर में, तो जिन क्लर्कों को काम का शौक होता, वह लाख खुशामदें करते, कपड़े धोते, बच्चों को खिलाते, चिलमें भरते, ब्याह-शादी के समय उनके मेहमान सभालते, लोग भी बहुत आदर करते। हमने कभी कोई चीज आटा, घी, सब्जियां कभी मोल लेकर नहीं खाई थीं। उस समय लोगों को आख की शर्म होती थी, किए काम का मूल्य आका जाता था। और अब मालूम नही, दुनिया का खून सफेद हो गया। मिन्नतें करनी क्या जानेंगे। काम हो गया तो फिर तुम कौन और मैं कौन ? मजाल क्या पहचान लें।

एक दिन बड़े अफसरो ने अचानक छापा मारा तो उस समय ट्रांजिस्टर से 'आहें न भरीं, शिकवे न किए, न तेरा किसी ने नाम लिया' कव्वाली चल रही थी, सिर झूम रहे थे।

'यह दफ्तर है कि साईं का तकिया !' बड़ा अफसर गरजा और आटे में घुन भी पीसा गया। उसकी किसी अन्य महकमे मे बदली हो जाने से हमारी सिरदर्दी से छुटकारा हो गया।

पर उससे भी विचित्र एक अन्य कर्मचारी से कुछ साल हुए वास्ता पड़ा था।

उसे दूसरे कर्मचारी आध्यात्मिक शक्तियों का स्वामी मानते थे। सारा

दिन उसके सेवकों का तांता बंधा रहता। वे आते, उसके चरणों को हाथ लगाते। हाथ जोडकर हुजूरी में खड़े रहते। कोई रोटी वाला डिब्बा लाता। कोई फल-वल। वह अफीम खाए बटेरे की तरह अध-मुंदी आंखों से दया की नजरों से थपकियां देता। ऊपर तक उसकी सिफारिशें चलती! इसलिए महकमे का मुख्य कर्मचारी भी अभिशप्त होने के डर से न कभी उसका काम देखता और न उसको कोई काम करने के लिए कहता।

जब उसे किसी ने काम के बारे में कहना तो उसने बड़े अन्दाज से कहना, "प्रभु की लीला बड़ी न्यारी है! यह दफ्तरों के काम दुनियावी काम हैं और हमारी चेतना तो प्रभु से लगी हुई है।" और फिर थोड़ी देर मस्ती में ऊंघने के बाद उन्होंने बड़े उन्मादक रंग और स्वर में यह दोहा अलापना :

अजगर करे न चाकरी,
पंछी करे न काम।
दास 'मलूका' यूं कहे,
सब का दाता राम!

अब किसी अन्य दफ्तर को प्रसन्न करते हैं!

एक चपरासी के साथ एक साल बिताने का अवसर मिला था। वह रात को जुआ खेलता। इसलिए दफ्तर में ऊंघता रहता। जब उसे किसी दफ्तर को जाने का बहाना मिलता तो सारा दिन बिताकर लौटता। पूछने पर कहता, "वह दफ्तर क्या है, कबाड़खाना समझ लें। कागज मिला ही नहीं! एक बाबू छुट्टी पर था। दूसरा अस्पताल गया हुआ था। तीसरे को बड़े साहब ने बुला लिया। मुझे उन्होंने चाय के लिए भेज दिया। वहां बड़ी लम्बी क्यू मे जब मेरी बारी आई तो पानी खत्म हो गया। नलके बन्द! क्या करता, पांच घंटे लग गए। यहां सौ काम पड़े हैं!" इस तरह उसने अनुपस्थिति के लिए सौ बहाने बनाने! हालांकि वह सिनेमा देखने के लिए चला गया था। ऐसे महाशयों के साथ भी सह-अस्तित्व का सिद्धान्त पालना पड़ता है।

मेहरबां कैसे-कैसे···

शेर जंग जांगली

□

आपके भी बहुत-से मेहरबान होंगे। झिझकिए मत, बुरा न मानिए, जरूर होंगे ! भई, हरेक के होते ही है। मेरे भी बहुत-से मेहरबान हैं। सबके बारे में जिक्र करने लगूं, तो एक दफ्तर ही खुल जाएगा। इतनी फुरसत कहां ! फिर भी मेहरबानों के बारे मे बात करनी बहुत जरूरी है।

लीजिए, सबसे पहले मैं आपको अपने दोस्त तैश सिंह तैश से मिलाता हूं। तैश साहब को कहानी लिखने का शौक है। एक दिन मिले और कहने लगे, "अगले महीने मासिक 'हलचल' में मेरी एक मनोवैज्ञानिक कहानी छप रही है।"

"जरूर। क्यों नही !" मैंने उत्तर दिया।

'हलचल' का वह अंक आया। उनकी कहानी पढ़ी। भई, मुझे बिल्कुल ही नही जंची। मोटे तौर पर कहानी इस प्रकार थी : कहानी का नायक *कुरसी पर बैठा है।* सामने जमीन पर उसका कुत्ता प्लेट में पड़े बिस्कुट खाने शुरू कर देता है। कुत्ता बिस्कुट खा रहा है और नायक दुनिया में फैली भूख के बारे मे सोच रहा है। उसके विचारों की शृंखला उसकी प्रेमिका के आने से टूट जाती है और फिर वह उससे शरीर की भूख मिटाती है। सच तो यह है कि मुझे यह बड़ी ही फिजूल कहानी लगी।

उसी शाम तैश साहब तशरीफ ले आए। कुछएक औपचारिक बातों के बाद कहने लगे, "प्यारे, 'हलचल' में मेरी जो मनोवैज्ञानिक कहानी छपी है, उसने साहित्यिक क्षेत्रों में तहलका मचा दिया है ! पर मैं तुम्हें बता दूं, इस कहानी को समझने के लिए दिमाग की जरूरत है ! कई उल्लू के पट्ठे

ऐसे भी होंगे, जिनको यह कहानी बिल्कुल पसंद नहीं आएगी। अच्छी कहानी ऐरा-गैरा नहीं समझ सकता। इसका फैसला तो आने वाला समय ही करेगा। रास्ते में प्रोफेसर मान साहब मिल गए। कहने लगे, 'बड़ी घटिया किस्म की कहानी थी!' मैं चुप रहा। भई, किस लिए लानत-मलामत करनी है! फिर प्रोफेसर है। पहले तो मैं कहने वाला था कि वाया भटिंडा बी० ए० करके तो तुमने पंजाबी में एम० ए० किया है, तुम्हें क्या मालूम, कहानी किस चिड़िया का नाम होता है! साले बड़े आलोचक बने फिरते हैं! मैं कहता हूं, दो ही तो मसले हैं दुनिया के सामने—रोटी और सेक्स। और प्यारे, जिस खूबसूरती से मैंने इन दोनों को इस कहानी में निभाया है, मुझे ही मालूम है! खैर, छोड़ो इन बातों को! तुम बताओ, तुम्हारी क्या राय है?"

तो भई यारो, सच मानो, मैं तो कांप ही गया। बड़ी अजीब उलझन में फंस गया था। मुझे उनके सामने यह मंजूर करने में बड़ी शर्म महसूस हो रही थी कि मैं भी उल्लू का पट्ठा हूं। पर दिल में महसूस कर रहा था कि शायद होऊं भी! पर मैं सीधा-सादा मामूली किस्म का आदमी हूं, इसलिए मैंने निवेदन किया, "माफ करना, तेश साहब, मैं अभी तक कहानी पढ़ नहीं सका!"

"कोई परवाह नहीं! तुम भाभी जी से कहो, जरा चाय बना लायें। मैं तुम्हें अभी कहानी सुना देता हूं।"

"इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या होती···पर आज हमें किसी ने खाने पर बुलाया है। हमें अभी चले जाना है। फिर कभी सही!"

"तो कल?"

"कल हम किसी को अपने घर बुलाने के बारे में सोच रहे हैं।"

"तो परसों?"

"परसों मेरा ओवर टाइम लग रहा है। काफी लेट घर पहुंचूंगा।"

"अच्छा, तो चौथे दिन?"

"तीसरे दिन मैं ओवर टाइम के कारण हुई थकावट दूर करने के लिए आराम करूंगा।"

"कोई बात नहीं, पांचवें दिन सही?"

और मैंने हथियार डालते हुए कह ही दिया, "हां, पांचवें दिन ठीक रहेगा।"

पांचवें दिन तेश साहब फिर हाजिर थे। जरा भी समय नष्ट किये बिना उन्होंने पूछा, "कहानी पढ़ ली ?"

"हां।" मैंने उत्तर दिया।

"कैसी लगी ?"

"एक ही बात में फैसला कर दूं ?"

"कर दो।"

"तुम मुझे उल्लू का पट्ठा समझते हो ?"

"नहीं।"

"तुम मुझे बाया भटिंडा बी० ए० किया हुआ समझते हो ?"

"नहीं।"

"बस, इससे ज्यादा मैं कहानी के बारे मे कुछ नहीं कहना चाहता।"

और फिर वह कितनी ही देर तक अपनी कहानी के तकनीकी मनोवैज्ञानिक पक्षों पर प्रकाश डालते रहे।

और मेरे दूसरे मेहरबान का नाम ही मेहरबान सिंह है ! उसे लिखने का शौक तो नहीं, पर सुनने का शौक जरूर है। यह उसकी खूबी है कि चाहे कहानी सुने या कविता, उपन्यास का कोई परिच्छेद सुने या नाटक, प्रशंसा के पुल बांध देता है। जब पहले दिन आया, तो कहने लगा, "सुनाओ भाई साहब, कुछ नया लिखा ?"

"हां, यार, एक कहानी लिखी थी पिछले हफ्ते।"

"हो जाए फिर !"

"लो, सुनो फिर !" मैंने कहानी शुरू की, "उस रात बहुत तेज हवा चल रही थी..."

"बहुत खूब ! क्या बात है उस रात की ! तेज हवा ! बहुत अच्छा...! हां जी, फिर ?"

"मैं अपने कमरे मे बैठा हुआ आशा को पत्र लिखने के बारे में सोच

रहा था···"

"भई तौबा ! कमाल कर दिया भाई साहब ! आशा को पत्र लिखने के बारे में सोचना ! वाह ! वाह ! इस सोच का मुकाबला नहीं ! एक बार फिर ये पंक्तियां पढना, भाई साहब···! उफ़ ! कलम तोड़कर रख दी आपने ! हां जी, फिर ?"

"आशा, जो कभी मेरे साथ कालेज में पढ़ा करती थी। आशा, जो मेरे जीवन की आशा थी···"

उसने चीख मारते हुए प्रशंसा की, "हाय, ओए रब्बा ! आशा, जो मेरे जीवन की आशा थी ! अरे भाई साहब, आपके हाथ चूम लू ! तौबा करा दी, तौबा !"

पता नहीं, झूठ था या सच, कहते हैं, मेहरबान सिंह ने एक बार एक शायर से कविता सुनते हुए, प्रशंसा करते समय अपने सिर के बाल नोच डाले थे और शायर के कपड़े फाड दिए थे !

मुझे पहले ही दिन उसकी प्रशंसा से परेशानी महसूस होने लगी थी। हमेशा यही कोशिश करता था कि मेहरबान सिंह कुछ न सुनने की मेहरबानी करे, तो अच्छा है। वह कहानी या कोई रचना का थोड़ा-सा भाग सुनने के बाद कहेगा, "भाई साहब, इतनी कातिल चीज···बोतल पीकर ही सुनने लायक है ! मंगवा लीजिए न एक बोतल ?"

मेहरबान सिंह के साहित्यिक मित्रों का क्षेत्र काफी व्यापक है। वह प्रायः कहता है, "भाई साहब, पता नहीं, आपमें क्या आकर्षण है, जो मैं खुद ही यहां आ जाता हूं, वरना लेखक लोग तो मुझे ढूंढ़ते रहते हैं !"

मेरे एक और मेहरबान हैं। उन्हें न लिखने का शौक है, न पढ़ने का। बस, हर समय अपनी बहादुरी के कारनामे सुनाने का और डींगें हांकने का जुनून की हद तक शौक है। भारत से नये-नये आए थे। दूर-करीब के रिश्तेदार थे, इसलिए कुछ दिन मेरे पास ही ठहर गये।

एक दिन मेरा एक साहित्यिक मित्र आ गया। हम कुछ अन्य लेखकों के बारे में बातें करने लगे। मैंने कहा, "तुमने सुमन की कविता पढ़ी थी ?

बड़ी बेतुकी-सी कविता लिखी है उसने ! मिलने दे, उसके सामने ही उसकी कविता की खाल उतारूंगा !"

स्वदेश से आए हुए महाशय भी पास ही बैठे थे। बात सुनकर बोले, "भैया जी, आप बिल्कुल न घबराइए। खाल तो मैं उतार फेंकूंगा ! लुधियाना का सैंडो भी डरता था मुझसे ! किस साले की हिम्मत है, मेरे होते हुए आपकी ओर आंख भी ऊंची करके देख सके !"

मैंने उन्हें समझाते हुए कहा, "आप यह बात नहीं समझते ! यह और बात है !"

"भैया जी, बात कुछ भी हो, हमने कौन-सी चूड़ियां पहन रखी हैं? जो आपकी हवा की तरफ भी झांका, साले का मार-मारकर हुलिया बिगाड़ दूंगा !"

मुश्किल से उन्हें चुप कराया। मित्र के साथ फिर वार्तालाप शुरू किया, "प्रोफेसर गुरचरण कांफ्रेंस पर बड़ा अकड़ रहा था, हालांकि उसकी ज्यादती थी।"

स्वदेश से आए हुए महाशय फिर भड़क उठे, "भैया जी, दूर कर दूंगा उस प्रोफेसर की अकड़ ! मैंने सैंडो जैसों की अकड़ दूर कर दी, तो बेचारा प्रोफेसर किस खेत की मूली है ! एक बार दिखा दें, कौन है, बस, बाकी मैं समझ लूंगा ! अगर कहीं फिर अकड़ जाए, तो मुझे इंसान का पूत न कहिएगा !"

जी तो चाहा कि कह दूं, 'भई मैं, तो अब भी तुम्हें इंसान का पूत नहीं समझता,' पर कुछ तो अपने कमजोर शरीर को और कुछ रिश्तेदारी को सामने रखते हुए चुप रहने में ही मैंने भला समझा।

इसी तरह पांच-सात अन्य साहित्यिक मित्रों के सामने भी, रोकने और टोकने के बावजूद, उसने शेखी बघारी। बात धीरे-धीरे सभी साहित्यिक क्षेत्रों में पहुंच गयी और सभी मुझसे मिलने में भी कतराते हैं। कहते हैं, "श्रीवास्तव ने तो गुण्डे पाले हुए हैं और वह उनके रोब से बड़ा साहित्यकार बनना चाहता है !"

यद्यपि यह मेहरबान कहीं और रहने लगे हैं, पर अभी तक साहि-

त्यिकों से टूटे हुए मेरे संबंध ठीक नहीं हुए। अभी भी कभी-कभी वह महाशय आकर दर्शन दे जाते हैं, कुशलता पूछजाते हैं।

एक और मेहरबान...छोड़िए जी यह किस्सा! मैं तो पहले ही कह चुका हूं कि अगर सबका जिक्र करने लगूं, तो एक दफ्तर ही खुल जाएगा और इतनी फुरसत कहां है मुझे!

विवाह के ढोल सुहाने

अनंत सिंह काबली

□

दूर के ढोल सुहाने हों या न हों इससे कोई अंतर नहीं पड़ता । लेकिन जब विवाह के ढोल सुहाने लगें, तो वह जीवन-भर के लिए एक मुसीबत बन सकते हैं, क्योंकि विवाह एक सब्ज बाग है, जिसके जादू-भरे आकर्षण से कोई भी नहीं बच सकता । किसी विवाह पर बजने वाली शहनाइया मन को मंत्रमुग्ध कर लेती हैं, जबकि वास्तव में विवाह कांटों की एक सेज है । एक मीठा विष है या एक ऐसा रोमास है, जिसमें हीरो की मौत पहले ही परिच्छेद में हो जाती है ।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि सारे कुवारे विवाह कराने के अभिलाषी होते हैं, जबकि सभी विवाहित इस मुसीबत से पीछा छुड़ाना चाहते हैं । एक पार्क में तीन आदमी बैठे थे । एक रो रहा था । दूसरा हंस रहा था और तीसरा माथे पर हाथ रखकर सोच में डूबा हुआ था । किसी ने कारण पूछा, तो पहला कहने लगा, "मैं इस लिए रो रहा हूं कि मैंने विवाह करवाकर मुसीबत मोल ले ली है और अब छुटकारा पाना भी मुश्किल हो गया है ।"

दूसरे ने कहा, "मैं इस विवाहित को देखकर हंस रहा हूं कि ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद है कि मैंने विवाह नहीं करवाया ।"

तीसरा बड़ा क्षुब्ध होकर बोला, "मैं इन दोनों को देखकर सोच में डूबा हुआ हूं कि विवाह करवाऊं या नहीं । क्योंकि विवाह के बाद आदमी के आत्मसम्मान का फातिहा पढ़ा जाता है ।"

विवाह या शादी को लोग खाना आबादी कहते हैं । खाना आबादी का अभिप्राय यह है कि विवाह करवाकर घर बसाना, न कि बच्चे पैदा

करके देश की जनसंख्या में बढ़ोतरी करना। कई आदमी विवाह का मनोरथ यही समझते हैं। किसी आदमी ने अपने गृहस्थ जीवन के बारे मे निस्संकोच कहा था, "विवाह से पहले मेरे छह सिद्धांत होते थे, लेकिन अब छह बच्चे हैं और सिद्धात एक भी नही।" विवाह दुखो की एक खदान मे प्रवेश करने को कहते हैं। एक प्रेमी और प्रेमिका का विवाह होने लगा। प्रेमिका कहने लगी, "सुनो प्यारे! हमें अब कोई अलग नही कर सकता। हमारा भविष्य अब कितना सुंदर होगा। मैं तुम्हारे दुखों में भी सदा तुम्हारा साथ दूगी।"

प्रेमी ने उसकी बात काटते हुए कहा, "लेकिन परमात्मा की कृपा से मुझे तो कोई दुख नही।"

प्रेमिका ने अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहा, "मैं अब की बात थोड़ी कर रही हूं। मैं तो विवाह होने के बाद की बात कर रही हूं।"

सच है, महाविद्वान बेकन ने ही तो कहा है, "विवाह करवाकर आदमी पहले की अपेक्षा सात वर्ष अधिक बूढा लगने लगता है।"

कोई भी प्रेमी और प्रेमिका विवाह से पहले ही जीवन की रंगीनियों का मजा लूट सकते हैं और एक दूसरे से जी भरकर प्यार कर सकते हैं। विवाह करवाने के साथ ही उनके कई वर्ष के प्रेम का अंत हो जाता है। किसी आदमी को विवाह के लिए उतावला भी नही होना चाहिए, जैसे कि अंग्रेजी की पुस्तक 'दी ओल्ड बैचलर' मे लिखा है कि :

"आदमी जल्दबाजी में विवाह कराता है और फुरसत के समय क्षुब्ध होता है।"

सभी जानते हैं कि शादी खाना बरबादी होती है। फिर भी लोग बड़े उत्साह और उमंग के साथ इस दुर्गम पथ पर चलने के लिए कमर कस लेते हैं। गुस्सा तो उन लोगों पर आता है, जो एक बार हाथ लग चुकने के बाद भी दूसरी, तीसरी या चौथी बार फिर सेहरे बांधकर इस विपत्ति को मोल लेने के लिए चल पड़ते हैं। फिर यह लोग कर्मों को क्यों कोसते हैं। 'खुद ही फंसे हो, अब तुझे कौन छुड़ाए' वाली बात है। डच देश की एक कहावत है, 'एक बार विवाह कराना कर्त्तव्य होता है, दूसरी बार

गलती और तीसरी बार मूर्खता ···।'

आदमी विवाह करवाकर स्त्रियों मे तंग होते हैं और स्त्रियां अपनी जगह पुरुषों से दुखी होती हैं। विवाह का यह बंधन चीज ही ऐसी है। एक दुकानदार अपनी पत्नी को साथ लेकर कुरुक्षेत्र के मेले पर गया। वहां जब वह सरोवर मे स्नान करने लगा, तो उसने अपनी श्रीमती का हाथ पकड़कर कहा, "आ भाग्यवान, एक डूबकी मिलकर लगाएं।"

उसकी पत्नी ने घबराकर पूछा, "वह किस के लिए ?"

पतिदेव कहने लगे, "सुना है, अगर कोई स्त्री-पुरुष इकट्ठे इस सरोवर में डूबकी लगाएं, तो वह जन्म-जन्म के साथी बन जाते हैं।"

यह सुनकर श्रीमती ने झट अपना हाथ पीछे खींच लिया और कहने लगी, "पहले ही मुझे इस जीवन में कौन-सा सुख है, जो अब सारे जन्मों का साथी बनाना चाहते हैं ?"

विवाह करवाने का चाव हर नवयुवक के दिल में होता है। विवाह करवाते समय तो सभी खुशी से फूले नही समाते, लेकिन बाद मे कोई बिरला ही प्रसन्न रह पाता है। एक नवयुवक बड़ा हंसमुख और बहुत खुश रहता था। उसकी पत्नी ने उसको बड़ा जोर देकर इस बात पर रजामंद कर लिया कि वह उसके साथ कुछ दिनों के लिए अपनी ससुराल चले। वे दोनों बसों के अड्डे पर गए। स्त्री सामान के पास खडी हुई और पुरुष टिकटो वाली खिड़की के आगे लगी कतार में जा खड़ा हुआ। जब वापस आया, तो उसके हाथ में एक ही टिकट था। उसकी पत्नी ने हैरान होकर पूछा, "यह क्या, आप एक ही टिकट लाए हैं। मैंने भी तो जाना है।"

"हां, तुम ही ने तो जाना है।" पुरुष ने धीमी-सी आवाज में कहा।

कितने मजे हैं कंवारे रहने मे। दम का दम, न धोखा न गम। न लेने की चिंता, न देने की। आदमी कितना आजाद होता है। सिरहाने बांह रखकर अपनी नींद सोता है, अपनी नींद जागता है। जहां विवाहित 'नून, तेल, लकड़ियों' के धंधों में फंसे रहते हैं, वहां एक कंवारा आदमी लंबी तानकर सोता है और निश्चिंतता से दिन बिताता है। उसको चिंता

भी किस बात की होगी। मूंछों को ताव देकर खाने के समय होटलों में विराजमान हो जाता है। बढ़िया से बढ़िया खाना खाता है। सिनेमा देखता है। सैर करता और कुटुंब वालों को दुख और चिंताओं की दलदल में फंसे देखकर मजाक उड़ाता है। विवाह करवाना पीड़ाओं को बुलावा देने वाली बात है। एक फ्रांसीसी कहावत है, 'प्यार शादी की सुबह है और शादी प्यार की शाम।'

हर रोज एक ही व्यक्ति के माथे लगना, उसी के साथ प्यार करना, उसी के साथ लड़ना-झगड़ना, उसी के साथ रूठना-हंसना, उसी के पास बैठना-उठना, उसी के साथ खाना-पीना। बात क्या, सारा जीवन एक ही को सौंप देना, यह भी कोई बात हुई। यह दिन-रात का साथ, यह घर-बाहर का साथ, यह सारी उम्र का साथ, दोनों को 'बोर' कर देता है। पति-पत्नी गृहस्थ-स्कूटर के दो पहिये होते हैं, लेकिन स्कूटर वालों ने भी एक पहिया (स्टेपनी) स्पेयर रखा होता है और जरूरत पड़ने पर पहिया बदल लेते हैं।

कई कहते हैं कि पुरुष के लिए विवाह कराना झख मारने वाली बात है। सुखदायक तो स्त्री के लिए भी नहीं, लेकिन उसकी और बात है। शायद इसीलिए महाविद्वान् डिजरायली ने कहा है, "हर लड़की को विवाह करा लेना चाहिए, लेकिन किसी भी लड़के को ऐसा नहीं करना चाहिए।"

विवाह एक ऐसी लाटरी है, जिसके द्वारा पुरुष अपनी स्वतंत्रता और स्त्रियां अपनी खुशी का जुआ खेलती हैं। कोई विरला ही विवाह कराकर अपनी स्वतंत्रता को कायम रख सकता है। पति और पत्नी का झगड़ा अधिकतर इस बात पर होता है कि पति रात को देर से घर आता है। वह शाम को अपने दोस्तों, मित्रों के साथ होटलों, क्लबों और सिनेमाओं में समय बिताना अपना अधिकार समझता है, लेकिन उसकी पत्नी उसको इतनी स्वतंत्रता नहीं दे सकती। वह घरवाली है। इसलिए वह अपने घरवाले को शाम ढले घर में ही देखना चाहती है। एक वकील को क्लब में बैठे हुए उसके मित्रों ने पूछा, "क्यों यार, तुम जब रात को देर से घर जाते हो, तो अपनी पत्नी को क्या कहते हो?"

उसने कहा, "मुझे कुछ कहने की जरूरत ही नही पड़ती। वह स्वयं ही सब कुछ कह जाती है।"

विवाह दो दिलों का मिलाप नही, बल्कि एक औपचारिक बंधन है। मजबूरी वाला काम है। वास्तव में एक विवाहित जोड़े का आपस का प्यार बिना बेगार के कुछ भी नही। एक नवविवाहिता जोड़ा फिल्म देखकर आया। घर आकर पति ने पत्नी को कहा, "क्या बात है, तुम मुझे उस प्रकार प्यार नही करती, जिस प्रकार वह लोग फिल्म मे करते थे।"

पत्नी ने उत्तर दिया, "आप तो पागलपन की बातें करते हैं। आपको पता है, उनको इस काम के पैसे कितने मिलते हैं ?"

कुछ भी हो, आदमी को जीवन-साथी प्राप्त करने का चाव भी बहुत होता है, लेकिन जब वह साथी मिल जाता है, तो, 'कोस न चली, बाबा प्यासी।' वाली बात हो जाती है। फिर उस साथी या साथिन से नाक में दम भी जल्दी आ जाता है। एक स्त्री और उसकी जवान लड़की फिल्म शुरू होने के बाद सिनेमा हाल मे पहुची। सिनेमा के मैनेजर ने टार्च की सहायता से मां और बेटी के लिए दो खाली सीटों की तलाश शुरू कर दी, लेकिन किसी ओर भी दो खाली सीटें एक साथ दिखाई न दी। आखिरकार उसने सलाह दी कि मां-बेटी एक दूसरे से दूर जो सीटें खाली हों, उन पर बैठ जाएं। उस स्त्री ने इस बात पर नाराजगी प्रकट की और कहा, "तो क्या तुम एक लड़की को उसकी मां से अलग करना चाहते हो ?"

उसने कहा, "नही, बिलकुल नहीं। मैंने कुछ वर्ष हुए इस प्रकार किया था, तो उसकी सजा अब तक भुगत रहा हूं।"

दुनिया की महान् हस्तियों ने भी विवाह का मजाक उड़ाया है। टैनीसन लिखता है, "विवाह की रचना ही स्वर्गों मे हुई है।" बर्नार्ड शा ने कहा है, "स्त्रियों ने पुरुषों को फांसने के लिए संसार में खाइयों, फंदों, जालों और पिंजरों आदि का बखेड़ा डाला हुआ है।" इसी प्रकार आस्कर वाइल्ड कहता है, "पुरुष इसलिए विवाह कराते हैं कि वे अकेले

थकावट महसूस करते हैं और स्त्रियां इसलिए कि वह श्रेष्ठ होती हैं; लेकिन विवाह के बाद दोनों को ही निराशा होती है।"

यदि विवाह करवा कर आदमी मन की शांति खो बैठे, तो विवाह उसके लिए एक धोखा है। इसीलिए मैं कहता हूं, कि विवाह के ढोल सुहाने होते हैं।

बड़ी शार्ट है

प्रो० बलबीर सिंह

□

अंग्रेज चले गए। हमारे देश की गुलामी दूर हो गयी, लेकिन हमने अंग्रेजों की कुछ बातें अपने लिए अच्छी समझकर पकड़ ली। इसी प्रकार हमने कुछ अंग्रेजी के शब्द इस प्रकार उपयोग करने शुरू कर दिए कि वह शब्द हमारी अपनी मातृभाषा के ही लगने लगे हैं। भाषाएं इसी प्रकार बढ़ती और प्रफुल्लित होती हैं। अंग्रेजी भाषा ने भी कई हिंदी, पंजाबी या हिंदुस्तानी के शब्द अपनाए हैं। उन शब्दों के अर्थ हम अंग्रेजी कोष मे देख सकते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि अंग्रेजों ने वह शब्द अपना लिए हैं। कीकर के पौधे या गूद को 'बबूल' कहते हैं। बग्घी दो या चार घोड़ों की गाड़ी है, जिसको तेलुगु भाषा में बंडी कहते हैं। टिफन दोपहर का खाना है। समुद्री तट को घाट कहा जाता है। यह सारे और अन्य कितने ही शब्द अंग्रेजी शब्दकोष मे मिल जाएंगे।

इसी प्रकार अंग्रेजी के भी कई शब्द पंजाबी मे आम उपयोग किए जाने लगे है। थैंक्स, सारी, गुड, बैड, शार्ट आदि शब्द हम प्रतिदिन की बातचीत मे आम लोग उपयोग करते हैं। किसी को कसकर ठोकर मारें, ताकि उसको उसके परलोक सिधार गए बड़े-बूढ़े भी याद आ जाएं और उसका सारा शरीर पीड़ा से कांपने लग जाए। आप धीरे से 'सारी' कहकर उसका गुस्सा शांत कर सकते हैं। उसकी पीड़ा, उसका गुस्सा यों उड़ जाएगा, जैसे आंधी मे मक्खी-मच्छर उड़ जाते हैं, और आप 'सारी' कहकर आनंद लूटें।

इन शब्दो में ही शब्द हैं, 'टाइम या समय और 'शार्ट' या कमी। हमारे प्रत्येक वर्ग के लोग इन शब्दों का प्रयोग करते हैं। लेकिन अनपढ़

लिए बच्चे को अपनी छाती का दूध देना बंद कर दिया। बच्चों को आयाओं के हवाले करना शुरू कर दिया। बेबी सेंटर अस्तित्व में आए। बेबी-होम बनने लगे, जहां माताएं अपने बच्चों को छोड़कर आजाद होने लगी। बच्चे ने जब मां की छाती से दूध न पिया और ढाई-तीन साल की उम्र मे ही पब्लिक स्कूलों मे ढकेले जाने लगे, तो बच्चा माता-पिता के लालन-पालन से दूर होने लगा। भारत मे भी जेनरेशन गैप ने जन्म लिया। इस जेनरेशन गैप का परिणाम हमारे सामने है। बच्चे माता-पिता का हुक्म मानने को तैयार नही। बच्चे बागी होते जा रहे हैं। पढ़ने वाले बच्चो से यह बात आरंभ हुई और अनपढ़ बच्चे भी इसके प्रभाव तले आ गए। घरों में, देश मे अशांति बढ़ने लगी, सो एक सभ्यता का दूसरी सभ्यता के साथ मेल-मिलाप होने लगा। बस, यही हाल भाषाओं का है, शब्दों का है। इन शब्दों का दुरुपयोग भी खूब होता है।

यह टाइम न होने की बीमारी हर अमीर-गरीब, पढ़े हुए और अनपढ को है। 'सॉरी' कहना हर शिक्षित और अशिक्षित को आ गया है। शार्ट का उपयोग प्रत्येक व्यक्ति कर लेता है। यह शार्ट वास्तव में 'शार्टेज' है, जिसके अर्थ हैं—कमी, या अभाव, लेकिन अनपढ़ भाई इसको शॉट ही कहते जा रहे हैं।

बंबई की किसी पत्रिका के संपादक को पत्र लिखा, "श्रीमान जी, मैंने अंग्रेजी मे एक नाटक लिखा है। बंबई की अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन कंपनी ने उसकी पांडुलिपि को पढ़कर छापना स्वीकार कर लिया है। आपका नाम संशोधक के रूप मे उपयोग करना चाहता हूं। पांडुलिपि भेजना चाहता हूं। कृपा करें।···प्रतिशत रायल्टी आपको मिलेगी।" उत्तर शहद भीगे शब्दों में आया, "प्रोफेसर साहब, आपकी रचनाएं मैं विशेष रूप में शौक से पढ़ता हूं। मुझे खुशी होगी, आपका काम करके। रायल्टी की बात मुझे अच्छी नहीं लगी। एक घर तो डायन भी छोड़ देती है, लेकिन समय कहां है (वेयर इज दी टाइम) इस काम के लिए, लेकिन आपका काम तीन महीने बाद कर दूंगा। आपकी प्रकाशन कंपनी को टेलीफोन किया था। उन्होंने इतना समय देना स्वीकार कर लिया है। मैंने डायरी में तीन महीने के बाद आपका काम करना दर्ज कर लिया है।"

अगले दिन संपादक महोदय विश्वयात्रा पर चले गए। चार महीने के बाद पत्र लिखा, "श्रीमान जी, क्या पांडुलिपि भेज दूं ?" उत्तर आया, "आज ही विश्व यात्रा से लौटा हूं। समय कहां है ? लेकिन आपका काम कर दूंगा। पांडुलिपि भेज दें।" पाडुलिपि भेज दी। संपादक महोदय के पास समय कहा था। पंद्रह वर्ष से ऊपर हो गए हैं। प्रकाशक कंपनी मुझे स्मरण-पत्र भेजकर हार गयी है। मैं संपादक महोदय को स्मरण-पत्र लिखकर तंग आ चुका हूं। कोई उत्तर नहीं। शायद उनके पास उत्तर देने का भी समय नही है।

संसार में सात आश्चर्य है। कई संपादक आठवां आश्चर्य बन जाते हैं। मेरे लेख राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में छपते हैं। एक राष्ट्रीय पत्रिका के संपादक को चार बार लेख भेजे। चारों बार 'सॉरी' शब्द के साथ लौट आए। पत्रिका के मालिक को लिखा। उसने अफसोस किया और लिखा, "सपादक आपको सीधे तौर पर उत्तर देगा।" संपादक का उत्तर आया, केवल गालियों का पत्र। वह उत्तर ज्यों का त्यों मालिक को भेज दिया और लिखा, 'आपके सपादक की साहित्यिक विद्वत्ता और उसकी पृष्ठभूमि इस पत्र से स्पष्ट है। मैं यह लेने को तैयार नही। अस्तु महात्मा बुद्ध के कथनानुसार 'अगर देने वाले की चीज न लें, तो वह चीज देने वाले की होती है।' इसलिए यह गालियों का पत्र आपके संपादक को मुबारक।" उस सपादक ने सब संपादकों को अपनी संपादक-बिरादरी का वास्ता देकर मेरे लेख न छापने की प्रार्थना की। कइयों को अपनी खानदानी बिरादरी का वास्ता दे डाला। ऐसे सपादक को आप किस आश्चर्य का नंबर देंगे ? प्रियवर, यह 'सॉरी' और 'टैम' (टाइम) की कारस्तानी है।

'बोगन वेलिया' का पौधा काफी घना और मोटा हो गया था। उसकी टहनियां मेरी खिड़कियो को तोड़कर मेरी दृष्टि को खराब कर रही थी। इनको या तो कटवा दिया जाए या छंटवा दिया जाए। घरों मे काम करने वाले मालियों की टोली मेरे घर से कुछ दूरी पर हर रोज ग्यारह बजे से तीन बजे तक बैठती थी, बीड़ियां पीती थी और गपशप में मस्त हो जाती थी। सोचा, चलो, इनको अपनी मुश्किल बताकर इसका हल ढूंढ़ा

जाये। अस्तु, एक दिन समय निकालकर उस माली टोली के पास जा पहुंचा। अपनी मुश्किल बतायी।

"तो आप क्या चाहते है सरदार साहब ?"

"दोस्तो, चाहना क्या है, या तो उस पौधे की छांट दें या काट दें ताकि मेरी खिडकियो मे प्रकाश आ सके।"

एक बूढ़ा माली बोला, "हां साब, हर रोज देखते हैं। वह पौधा छांटा जाना चाहिए।"

"इसीलिए मैं आपके पास आया हूं। जितने पैसे कहेगे, दे दूगा।"

"पैसे की तो कोई बात ही नही साब !" दो-तीन माली बोले, लेकिन वह बूढ़ा मेरा मुह चिढ़ाते हुए बोला, "एं, एं, एं है एं, पर टेम किधर है साब ?"

मैं अवाक् उसका मुंह देखने लगा। एक अन्य माली बोला, "साब, टेम की बड़ी शॉट है।" "टेम। शॉट ! वाह आलसियों का देश !" मैं धीरे से बडबडाया, लेकिन ऊंची आवाज़ में यही बोला, "दोस्तो, यहां तीन-तीन, चार-चार घटे गपशप मे बिता देते हो, काम करके पैसे कमा लो।"

"वह तो हमारा अपना टेम है, पर काम करने का टेम किधर है ? बहुत शॉट है !" बूढ़ा माली बोला।

मैं क्या कर सकता था। कान लपेटकर घर की ओर लौट आया। मेरी पीठ उनकी ओर हुई और वे एकदम 'ही-ही' करके गरज उठे, "हमारा टेम मांगता है।" काम न करने वालो का देश !

हम टाग पर टांग रखकर हवाई किले गढते-तोड़ते रहते हैं, लेकिन काम करते समय हमे पिस्सू पड़ जाते हैं और टेम का रोना रोते हैं।

हमारे देश मे कोई चौदह कला संपूर्ण हैं, कोई सोलह कला संपूर्ण। लेकिन बच्चे न जाने कितनी कला पूर्ण होते हैं। हम दोनों जवान थे। और मलकियत, हमारा प्रिंस आफ वेल्स, हमारा पहलौठा अभी छोटा ही था। सर्दियों की बहार थी। रात के लगभग चार साढे चार बजे होंगे। सोये हुए मलकियत की फालतू कला जाग उठी। उसने रोना शुरू कर दिया। उसकी मां उसको चुप कराने का प्रयत्न करती, लेकिन वह चुप नही हो रहा था। अगर आप बाप हैं या मा हैं, तो आपको पता ही होगा कि पति-

पत्नी में समझौता होता है कि पत्नी बच्चे जन्मेगी और रोते समय बच्चे को पति चुप करायेगा। अगर इस समझौते का आपको पता नहीं तो चुपचाप अब यह समझौता कर लें और बाकी बची जवानी आराम और सुलह-सफाई से बिताएं। अभी गिरे बेरों का कुछ नहीं बिगड़ा। यह लेख खत्म करने से पहले घर जाएं। अगर घर बैठे हैं, तो लेख पढ़ना बंद करें और अपनी जीवन-साथिन को बुलाकर यह समझौता करें। समझौता उलटा न कर लें, वरना आपको लेने के देने पड़ जाएंगे। आपको दुःख होगा। मेरा ख्याल है, आप मेरा मतलब भली भांति समझ गये होंगे।

तो समझौते अनुसार दिल पर पत्थर रखकर हमने रजाई की गर्मी का त्याग किया और अपनी ड्यूटी निभाने की खातिर मलकियत को उठा लिया और 'पुच-पुच' करने लगे, पर उस पर कोई असर न हुआ। बहुत पुचकारा, पर मलकियत, मेरी जीवन-साथिन का जन्मा लाल, टस से मस न हुआ। उसकी री-री जारी रही। उसको चुप कराते-कराते मैं उसके साथ स्वयं मिलकर रोने की रट तक पहुंच गया। जी चाहे, उसको कहूं, "अच्छा बाप जी, आपकी रोने की ड्यूटी मैंने ले ली और आप मुझ पर तरस खाकर चुप कर जाएं," लेकिन मलकियत की फालतू कला जारी रही। असल बात यह थी कि इतनी सारी कहने पर अगर मलकियत चुप कर जाता, तो फिर वह हमारा बच्चा कैसे होता! आखिरकार मैंने तंग आकर कहा, "मलकियत, वह देख कौआ!" पर वह देखे क्या! भला सर्दी के मौसम में रात के चार-साढ़े चार बजे कौए थोड़े उड़ते हैं! उसने अपनी फालतू कला और तेज कर दी। उसकी मां कड़ककर बोली, "प्रोफेसरा, इसे बाहर ले जा। मेरी नींद न हराम किए जा। भला मेरी संतान कौए-चिड़िया से चुप कर जाये!" मैं कान लपेटकर उसको बाहर ले गया। इधर-उधर घुमाते-फिराते हुए मैंने उसे पूछ ही लिया, "बेटा, क्या बात है, क्यों इस प्रकार रो रहा है?" उसने रोते हुए जवाब दिया, "मैंने चाय पीनी है।"—"ले, इतनी-सी बात के लिए गला फाड रहा है, और हमारी नींद हराम की हुई है!" मैं उसको अंदर ले आया और उसकी मां को कहा, "जरा उठ और थोड़ी-सी चाय बना दे बच्चे को!"

"दूध कहां से आयेगा? हमारा दूध देने वाला तो सात बजे आयेगा।"

"रात के बचे हुए दूध मे से दो घूट चाय बना दे !" मैंने कहा।

"मैंने रात खाना अच्छी तरह नही खाया था। इसलिए सारा दूध पी लिया था।"

"अच···छ ··छा !" मैंने हकलाते हुए उसकी ओर देखकर कहा, "मेरे जन्म-जन्मातर की दुश्मन, तुझे सारा दूध पीने का क्या शौक हो गया था। दूध की दो बूदें रख लेती, तो तेरी तोंद कम मोटी नही हो जानी थी।"

"तोंद का उलाहना न दे। फालतू भार भी तो मैं ही उठाती हूं।"

"और तेरी तोद की जो मुझे तकलीफ होती है, उसका तुझे ज्ञान ही कुछ नही।"

मलकियत की मां हसते-हंसते रजाई में से निकली और बोली, "इस नामुराद की बात न करो। न जाने कब की चाय इसके सिर पर सवार है !"

"चलो छोड़ो, बच्चे बंदर स्वभाव के होते हैं।"

"तुझे भी चाय की तलब लगी होगी। मुझे कहता जा रहा है। इस लाडले को कुछ नहीं कहता !"—वह चारपाई से बिफरी हुई शेरनी की तरह उतरी।

मुझे गुस्सा तो बहुत आया, लेकिन मैंने हथियार फेंकते हुए कहा, "तुम पानी गर्म रखो। मैं दूध का कुछ प्रबंध करता हूं। पानी रखेगी इससे धीरज हो जायेगा, नही तो समझौते की मेरी वाली शर्त टूट जायेगी। और मैं अपने हथियार फेंक दूगा।" मलकियत की मां को मुझ पर कुछ तरस आ गया। अपने शरीर के कपड़े ठीक करते हुए बोली, "आज तो मैं तेरी बात मान लेती हू। भविष्य के लिए इसकी आदत नही पड़नी चाहिए।"

मैंने आंखों ही आखो में उसका धन्यवाद किया और लोटा लेकर घर से दूध लेने के लिए निकल पड़ा—बच्चे की चाय के लिए दूध लेने ! किसी हलवाई की दुकान अभी तक नही खुली थी। घूमते-फिरते एक ग्वाला नजर आया। साइकल पर दूध देता फिर रहा था। उसको मैंने खड़ा किया और याचना की, "भाई, मुझ पर कुछ तरस खा। आधा किलो दूध दे

दे। मेरा प्रिंस आफ वेल्स, मेरा पहलौठा रो रहा है !"

"सरदार साहब, माफ करना, दूध नही दे सकता। मेरे ग्राहकों को ही पूरा नहीं होता। आजकल दूध की बड़ी शार्ट है।"

"शार्ट है, वाह जी, वाह !" मैंने माथे पर हाथ मारते हुए कहा, दूध की नदियों वाले देश में भी दूध की शार्ट !" मैं बड़बड़ाया, "ओह हो···बड़ी शार्ट है !" मैंने निश्वास लिया और साइकल पर सवार होते हुए ग्वाले को प्रार्थना की, "अरे भाई, तू पचास ग्राम ही दूध दे दे !"

वह साइकल पर सवार हो गया और बोला, "दूध की बड़ी शार्ट है। मेरे पास बात करने का भी टेम नही। मैं तो दूध की एक बूंद भी नही दे सकता।" यह कहकर वह हवा हो गया। कुछ अपनी किस्मत को और काके के भाग्य को कोसता मैं घर की ओर लौटा। मैं मा-पुत्र के बीच में पिसता जा रहा था। जी चाहा, यह खाली लोटा सिर मे मारकर अपने-आप को लहू-लुहान कर लूं।

रास्ते मे एक घर आया, जिसकी बत्ती जल रही थी। मुझे पता था, उनके घर मे भैंस थी। उनका दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुल गया। अंदर जाकर सामने खड़े घर के मर्द से याचना की, "मेरा बच्चा चाय के लिए रो रहा है। दूध नही मिल रहा। उसकी बड़ी शार्ट है। मैंने ग्वालों की मिन्नतें की। उनके पास टेम नही, मेरी बातें सुनने के लिए। हमारा दूध देने वाला लेट आयेगा। दूध के दो चम्मच दे दें।"

मर्द अवाक् मेरा मुह देखने लगा, मानो कह रहा हो, "न जान, न पहचान ! बड़ा बेशरम है। दूध जैसी अमृत चीज मांग रहा है !" उसके उत्तर देने से पहले ही दूसरे दरवाजे से उसकी बीवी अदर आते हुए बोली, "कोई बात नही भाई जी, लाइये लोटा। बच्चे तो ईश्वर का रूप होते है।"

"होते होंगे जी !" मैंने लोटा उसके सामने रखते हुए कहा, "पर मेरा बच्चा तो निरा शैतान का रूप है !" मैं रजाई की गर्मी त्यागने और थर थर कापते दुःख का अनुभव करते हुए बोला।

"यों न कहें भाई जी, बच्चे भगवान् का रूप होते है।" वह स्त्री लोटा लेकर अदर चली गयी। उसका आदमी सूखी नजरो से मेरी ओर

देखने लगा। जैसे मैं उनको धोखा दे रहा होऊं और धोखा देना ही मेरे जीवन का धंधा हो। कुछ क्षण मेरी ओर देखते हुए वह बोला, "पहले भी कभी मेरी गैरहाजिरी में मेरे घर दूध पीने आये हो?"

मैं सारी स्थिति को समझता हुआ कांपते हुए हकलाया, "नहीं-नहीं महाराज जी, कभी नहीं, मैं कसम खाता हूं।"

"हूं···" वह सोचता हुआ बोला, "अजनबी घर में इस समय आने की तेरी हिम्मत कैसे हुई!"

"महाराज जी, नेक संतान के लिए मां-बाप को क्या-क्या मुसीबतें नहीं झेलनी पड़ती हैं!"

इतने में स्त्री लोटा ले आयी। उसमें आधा किलो दूध होगा।

"बीबी जी, बहुत-बहुत धन्यवाद! कितने पैसे दू?"

"पैसे!" उसका आदमी कड़का, एक कदम मेरी ओर उठाकर बोला, "हम दूध बेचते नहीं। तेरे जैसे लफंगे को हमने दूध दे दिया!"

इस खयाल से कि यह भाई, कहीं मेरा लोटा छीनकर मलकियत को रोने के लिए और मुझे किए हुए समझौते से मुक्कद होने के लिए मजबूर न कर दे, मैं वहां से धन्यवाद करता हुआ दौड़ पड़ा। घर आने पर देखा कि मलकियत आराम से रजाई में खर्राटे भर रहा था।

सो, प्रिय पाठकगण, यह टेम न होने का जमाना है। शार्ट का युग है। आज चीनी की शार्ट है, कल वनस्पति की; कभी आटे की, कभी दूध की, अगर किसी चीज की कमी नहीं तो वह है महंगाई की···धक्कों की···हरि ओम् तत् सत्···।

साया

रामलाल नाभवी

'साया' है तो अक्षरों का एक शब्द, लेकिन, कुल सृष्टि इस एक शब्द में सिमटी हुई है। कौन है जिसे साये की आवश्यकता नहीं है और कौन है जो किसी के साये में नहीं रहता ? पैदा होने से लेकर मृत्यु तक अगर किसी वस्तु की आवश्यकता हर स्थान और हर समय रहती है, तो वह है साया।

सृष्टि में दो सच्चाइयां-रोशनी और अंधेरा हैं। साया अंधेरे का एजेंट है। जब अंधेरे में जाता है तो उसमें छुप जाता है और दिखाई नहीं पड़ता। रोशनी हो तो दिखाई पड़ता है। जरूरत है किसी वस्तु के होने की। साया होता है वस्तु के भीतर। वह वस्तु अंधेरे में हो तो साया बाहर नहीं आता, रोशनी में हो तो बाहर आ जाता है। रोशनी की शिनाख्त अंधेरे से है और अंधेरे की पहचान रोशनी से। हर व्यक्ति जो रोशनी की दुनिया में रहता है अपनी पहचान अपने साये से करवाता है। कहावत है किसी को अगर पूनम की रात में अपना साया दिखाई न पड़े तो उसकी मौत नजदीक होती है। रोशनी अकेली है तो उसकी मौत है और अंधेरा अकेला है तो उसकी मौत है। जीवन इन दोनों के मिलाप का नाम है। साये के बिना कौन-सा काम है जो हो सकता है !

साये का शासन हर जगह पर है। जीवन पर मौत का साया है। मौत पर जीवन का साया है। जिन्दगी मौत के डर से भाग रही है, मौत ठिठक गई है जिन्दगी के डर से। जिन्दगी और मौत की दौड़ चल रही है और साया आनन्द लूट रहा है।

चोर गहरे अंधेरे मे चोरी करता है। उसे साये का डर है। अपने ही

साये का, किसी और के साये का। वह रोशनी के सब नक्श मिटाकर भीतर कदम रखता है। बुरा काम करने के लिए अंधेरा चाहिए। अंधेरे मे वह हाथ-पांव मारता है। अंधेरे मे ही वह भाग जाता है। अंधेरे में छुपा साया उसके साथ ही अंधेरे मे गुम हो जाता है।

बड़े-बड़े व्यक्तियों, इतिहासकारों, लेखकों, व्यंग्यकारों और लीडरों का नाम तभी फैला, जब उन पर रोशनी का साया रहा। माता-पिता का साया रहा। गुरु का साया रहा। बाप का साया रहा। साया क्या है वास्तव मे एक दुआ है।

साया न मिले तो कुछ खोया-खोया लगता है। यही ख्याल साये की तलाश कराता है। किसी काम मे जुटने के लिए तैयार रहता है। साया कहता है कि उसे कोई तलाश करे। उसकी पहचान हो। मदद करने पर उतर आए तो कोठिया, महल बना देता है। मुहब्बत-प्यार का साया मिल जाए तो क्या कहने !

रोशनी में साया आपका साथ नही छोड़ता। वह कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी दायें, कभी बायें अठखेलिया करता हुआ आपके साथ ही चलता है, कभी कदमो मे लिपट जाता है। कभी आपके कद से बड़ा होकर अपनी ताकत का आगे सबूत देता है, अपनी हैसियत जताता है। कभी आपसे आगे निकल जाता है और कभी पीछे रह जाता है। वह आपका साथी है, आपका हमदम है, आप हजार कोशिशे करें, वह आपसे जुदा नही होगा। आप नाचिए, कूदिए, वह आपके साथ नाचेगा, कूदेगा। यही उसकी शान है। बच्चो के लिए वह एक खिलौना है। बच्चा हो या जवान या बूढ़ा उसका सलूक सबसे बराबर है।

आप सड़क पर अकेले जा रहे हैं। इर्द-गिर्द कोई नही। सडक पर चारोओर रोशनी है। दिल की बाते जबान पर आ रही है। राज की बाते, प्यार की कहानिया, कत्ल-ओ-गारत, चोरी, डकैती, लूट-खसोट, स्मगलिंग की बातें, जो कभी अंधेरे में हुई थी आप अपने से दुहरा रहे हैं। साया आपके साथ है। सब कुछ सुन रहा है। साये की तरह आपके साथ लगे रहने पर भी वह आपका भेद किसी को नही बताएगा। आपको भी नही। पूछकर देख लें। वह आपका भेदी है, आपका है, आपका ही है,

आपका ही रहेगा।

लड़ाई के मैदान मे तलवार, तीर, कमान का साया होता है। यह साया न हो तो लड़ाई कैसे हो और किस तरह हो ? लाखों घराने इस एक साये में पल रहे हैं, गरदन उठाकर चल रहे हैं और डंके की चोट से कहते हैं :

"तेगों के साये मे हम पलकर जवां हुए हैं।"

जंगल में आप जा रहे हैं। थककर चूर हो चुके हैं। ऊपर और नीचे से आपका शरीर झुलस रहा है। मौत का फरिश्ता आपका इन्तजार कर रहा है। अचानक एक दीवार पड़ गई। आप इसके साये में बैठ गए। शरीर मे ताजगी आई। आप अपने सफर पर फिर चल पड़े। मौत का फरिश्ता अपनी नाकामी पर हैरान है। साया सेवा करता है और बदले मे कुछ नहीं मांगता, कुछ नही लेता। आप भगवान् का शुक्रिया करेंगे, साये को भूल जाएंगे। साये को कोई शिकायत नही। वह एहसान नही जताता, यही उसका बड़प्पन है।

पेड़ किसे साया नही देता ! इन्सान हो या हैवान, चरिंदे हों या परिंदे, जब चाहें अथवा जब तक चाहें इस पेड पर या पेड़ में रहे, जब चाहें चले जाए। इसका सलूक सबसे बराबर है। साया किसी जाति, धर्म, देश, कौम से सम्बन्धित नही। साये की अपनी कोई जाति नही। वह सबका है और सब उसके हैं। साये में ठंडक है, चैन है, सकून है।

रोशनी हो तो साया कैसे न हो ! आप हजार बार दरवाजा बन्द कर पर्दे खींचे, कुंडिया चढ़ाएं, साया चुपके से आपके साथ भीतर घुस जाएगा। आप हजार टक्कर मार बहलाएं, फुसलाएं, लालच दें, साया कभी आपका साथ नही छोडेगा, रोशनी मे आप कोई काम उसकी मौजूदगी के बिना नही कर सकते। वह आपके किसी काम मे दखल नही देगा। आप तो उसके काम मे दखल दे ही नहीं सकते।

साया पैदाइश के साथ पैदा होता है, जीवन-भर साथ रहता है, मरने के बाद अरथी या जनाजे के साथ जाता है।

साये की बहुत किस्मे है। इनमे एक जुल्फो का साया है। जितनी घनी, लम्बी जुल्फें होगी, उतना ही आनन्ददायक साया होगा। कवियो

के दिमागों पर जुल्फ सीधा हमला करती है। इसके साये के नीचे ढेरों कविताएं लिखी जा चुकी हैं, लिखी जा रही हैं और लिखी जाएंगी। जब से जुल्फों ने कटना या छोटा होना शुरू किया है कविताओं में जान ही नहीं रही। आप घनी, लम्बी, काली साये की तरह जुल्फों के साये के नीचे बैठकर तो देखिए। एक फारसी के कवि ने कहा है, "शुनीदा कै बवद मानिदे दीदा।"

मैंने यह लेख एक छतरी के साये में बैठकर लिखा है, आपने किस साये में बैठकर इसे पढ़ा है? बताइए, ऐसी कोई जल्दी नहीं, अल्ला मियां का साया कायम रहा तो फिर मुलाकात होगी।

देसी टट्टू खुरासानी दुलत्ती

के० एल० गर्ग

□

देसी साहब अभी-अभी जागे हैं और रंग का ओवरकोट पहनकर टहलने की तैयारी कर रहे हैं। रंग के ओवरकोट की जरा ठहरकर बात करेंगे। पहले उनके पालतू जिकी-पिकी कुत्ते के बारे में बात कर लें ! हां, तो साहब जाग उठे हैं, पर कुत्ता अभी गहरी नींद सोया हुआ है। वह शायद किसी इंग्लिस्तानी बिलवेड के सपने ले रहा है ! देसी चीजें उसके कमर तले नहीं आती। इंगलैंड में अब देसी आदमी इम्पोर्ट नहीं हो सकते, पर अंग्रेजी कुत्ते हो सकते है। देसी साहब प्रयत्न करेंगे कि उसके लिए इंगलैंड कीही किसी बिच (कुतिया) का प्रबंध किया जाए। देसी साहब भी अंग्रेजी कुत्ते के बहाने विदेश-यात्रा कर आएंगे।

हां, तो देसी साहब बड़े ही प्यार से अपने अंग्रेज़ी कुत्ते को जगाते हैं। सिर पर मोहब्बत से हाथ फेरते हैं और बड़े ही मधुर स्वर मे 'मोना'-'मोना' का राग अलापते हैं। कुत्ता अपनी आलस्यपूर्ण पलकें खोलता है और अपने देसी साहब को देखकर च्यूं-च्यूं करने लगता है। शायद जल्दी जगा देने पर गुस्सा दिखा रहा है। समझ ही नही आता कि क्या कह रहा है ! अंग्रेजो की तरह बोलता है न ! अवश्य ही कह रहा होगा :

"यू ब्लडी इंडियन डाग ! काण्ट सी ? आई वाज हैविंग लवली ड्रीम आफ माई इंग्लिश बिलवेड !"

देसी साहब को बिलकुल गुस्सा नहीं आता ! गोरी चमड़ी वाले मालिक सदियों से हमारे साहब लोगों को 'इंडियन डाग' कहते आ रहे हैं, बल्कि जब वह 'ब्लैक डाग' कहते थे, तो हमारे देसी साहब के पूर्वज दुमे हिलाते हुए सिजदे में बिछ-बिछ जाते थे। फिर यह देसी साहब अपनी खानदानी

परंपरा को कैसे भुला सकता है :

रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्राण जाइ, पर वचन न जाई

साहब स्वयं यद्यपि देसी है, तथापि अपने कुत्ते को अंग्रेजी ढग से पालता है। शायद इसीलिए अपने कुत्ते का नाम देसी तर्ज वाला नही रखता। यह कुत्ता दरवेश, दीनू या धरमा नही हो सकता। यह सदा जानी, टोनी, लाटी आदि ही कहलाने मे गर्व समझता है ! देसी साहब को यह कुत्ता अपने किसी अंग्रेजी अफसर से भेंट मे मिला था। यह तब से ही मक्खन, पेस्ट्री, बिस्कुट या क्रीम-रोल खाता है, जब कि आम औसतन हिन्दुस्तानी बाजरे की रोटी के लिए भी गली के आवारा कुत्तों की तरह लड़ते थे !

देसी साहब स्वयं बिना चीनी के चाय पीता है, पर अपने इस कुत्ते के लिए खालिस दूध का प्रबंध करता है और दूध भी अपने सामने दुहाकर लाता है ! कुत्ते को अडल्टरेटेड दूध पिलाना अपना अपमान समझता है। उसको डर है कि कही कुत्ता हिन्दुस्तानी अडल्टरेशन के बारे में बी० बी० सी० पर भाषण न दे आए। एक बार साहब की नौकरानी ने अपने रोते हुए बच्चे के लिए बूंद-भर दूध मांग लिया था। साहब ने उसकी ओर यों देखा था जैसे कह रहे हों 'तेरे बच्चे को क्या सिर पर उठाएगे। हमारा मोनी क्यापि एगा···!' उनके 'डाग-लव' पर तो एक बहुत बड़ा ग्रंथ लिखा जा सकता है ! जब पेंशन लेने के बाद साहब अपनी आटोबायोग्राफी लिखेंगे, तो उसका आधे से अधिक भाग कुत्तों से भरा हुआ होगा। साहब कभी-कभी मूड में आकर कह ही देते हैं :

"आदमी की अपेक्षा यह कुत्ते ज्यादा वफादार होते हैं। युधिष्ठिर के साथ अंत तक एक कुत्ता ही गया था। यह भी मुझे स्वर्गलोक तक छोड़कर आयेगा···मोना···पुच-पुच···मोना !"

साहब के देसी दोस्त साहब की ऐतिहासिक 'नालेज' (ज्ञान) की कद्र करते हैं।

साहब स्वयं धुली हुई मूंग की दाल, आलू-पालक और पोदीने की ·ी के साथ खाना खाते हैं। शुद्ध अहिंसावादी हैं। शत-प्रतिशत शाका-

हारी—वैष्णव संप्रदाय के अनुयायी। पर कुत्ते के लिए तो मीट का प्रबंध करना ही पड़ता है। जब से कसाई भी सदने भगत बनने लग पड़े हैं, बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो रही है, पर कुत्ते के लिए तो मांस काप्रबंध करना ही पड़ेगा, चाहे इम्पोर्ट लाइसेंस के लिए किसी एम०पी० की ही चापलूसी करनी पड़े।

सारी-सारी रात जागकर कुत्ते की रखवाली करते हैं, कि कहीं कोई चोर ही न उठा ले जाए। ऐसी इंग्लिश नस्ल का कुत्ता सारे भारत में नहीं मिल सकता। भारत में जादूगर मिल सकते हैं, कोहेनूर हीरे मिल सकते हैं, शहीद मिल सकते हैं, पर इंग्लिश नस्ल के कुत्ते नहीं मिल सकते। इसीलिए साहब स्वयं जागते हैं और कुत्ता मजे से सोता है।

देसी साहब अपनी बीमारी के दौरान अस्पताल से दस पैसे की परची पर दवाई लाते हैं, लेकिन कुत्ते के लिए अंग्रेजी डाक्टर, अंग्रेजी दवाइयां और अंग्रेजी नुस्खे। साहब अच्छी तरह समझता है कि मालिक मालिक ही होता है चाहे कुत्ते का पुत्र ही न क्यों हो।

हां, तो साहब ने आज फिर पुचकारकर कुत्ते को जगाया है। कुत्ते का प्यारा-प्यारा सपना भुने पापड़ की तरह तिड़-तिड़ करके टूट गया है। वह साहब के पुच-पुच करने पर भी घुर-घुर किये जा रहा है। साहब को और प्यार उमड़ता है। कुत्ता उसके रंग ओवरकोट पर पांव मारता है। साहब ओवरकोट पर लगी मिट्टी झाड़ता है। कुत्ता फिर पांव मारता है और साहब की आंखों में सीधा झांकता है। घुर-घुर करता है। लगता है, जैसे पूछ रहा हो :

'आप लोग यह हमारी उतरन कब तक पहनते रहेंगे? अब तो आजाद हो गये हैं। अपनी पोशाक पहननी सीखिये।' साहब कुत्ते के सिर पर हाथ फेरकर मुसकराता है, जैसे कह रहा हो :

'भोले, अंग्रेज कुत्ते ! हम अपनी मनोवृत्ति का क्या करें, जो अपने मालिकों की उतरन पहनकर संतुष्ट हो जाती है? साहित्य में, समाज में, रहन-सहन में, खान-पान और बोलने तक में सब जगह हम पश्चिमी उतरन पहनकर ही अपना समय बिताने में अपनी शान समझते हैं।"

कुत्ता अभी भी घुर-घुर किए जा रहा है, और साहब अभी भी उसके

सिर पलोसे जा रहा है। अपनी-अपनी मजबूरी है, साहब देसी हैं, और कुत्ता एकदम इंग्लिश। हमारा एक मास्टर अभी भी अंग्रेजी चीजों को ही खरीदता है। बात-बात पर कहता है, "इंग्लिश चीजों का क्या मुकाबला है जी...अंग्रेज अंग्रेज ही थे। उनके सामने यह देसी गधे किस काम के! कहते हैं, देसी टट्टू, खुरासानी दुलत्तियां।"

मिनी एज

जे० एल० नंदा

□

मिनी (छोटी, या घटी हुई) एज (उम्र, समय, या काल)···मिनी एज का आरंभ हो चुका है। प्रत्येक वस्तु मिनी-से-मिनी होती जा रही है। छोटी-से-छोटी चीज़ में एक नहीं, अनेक गुण यों भरे जा रहे हैं, जैसे अखरोट, रीठे या कौड़ियां खेलने के शौकीन इनमें पारा, सिक्का या लाख आदि भरकर हलके को भारी, पोले को ठोस और कमज़ोर को ताकतवर करके इनको आम से खास बना लेते हैं। जो भी आविष्कार अस्तित्व में आता है, उसका मिनी रूप तत्काल तैयार हो जाता है···झट रोटी, पट दाल!

साहित्यकारों ने मिनी साहित्य की रचना करके कौन-सा तीर मार लिया है···बल्कि ऐसा सत्यानास किया है कि आम आदमी की बात छोड़िए, पढ़े-लिखे के भी कुछ पल्ले नहीं पड़ता। मिनी कविता निरी पहेली या बकवासबाज़ी से अधिक कुछ भी नहीं···इससे तो आम लोगों की रची दो-पंक्तियों की बोलियां ही अधिक सशक्त और आकर्षक होती हैं :

> तेरा घगरा सूत ना आवे,
> सहुलियां दा पिण्ड आ गया।
> (तेरा घघरा ठीक नहीं हो रहा,
> ससुराल का गांव आ गया है)

यही अवस्था मिनी कहानी या साहित्य की अन्य विधाओं की है, जो मिनी बना ली गयी हैं। छोटी रचना के प्रभाव से मैं अनजान

नीबू-निचोड़ की तरह उपदेशात्मक निष्कर्ष निकालकर भारतीय दर्शन मे ठोस वृद्धि की है.

"साढ़े तीन हाथ धरती तेरी है !"

पजाबी कवियों का दर्शन एक रूसी लेखक महात्मा टालस्टाय के दिल मे यो बैठ गया, जैसे बरसात के दिनों में किसी गरीब की कच्ची झोंपड़ी बैठ जाए···और उसने इस शिक्षा को अपनी एक कहानी 'हाउ मच लैंड डज ए मैन नीड' मे पेश करके उपदेश देना चाहा कि जमीन-जायदाद के लिए लोभ बढाने वाले बाज आ जायें, लेकिन नाजायज कब्जे करने वाले, झोंपड़ियां गिराकर महल बनाने वाले क्या परवाह करते हैं किसी महात्मा की या उसके उपदेशों की। उनके लिए भेड़ गर्भवती हो गयी तो कोई बात नही, भेड मर गयी तो कोई फर्क नही पड़ता।

आज के मनुष्य का मिनी रूप बौना है। यह नस्ल अभी आम नही हुई। इनके दर्शन आम तौर पर सर्कसो मे ही किए जा सकते हैं · यह लाभ-दायक भी उनके लिए ही हैं। इनको जोकर कहकर पुकारा और सत्कार दिया जाता है। यह दर्शकों को अपनी अजीब हरकतो और उछल-कूद से आखिरी समय तक मंत्रमुग्ध रखते हैं। इनकी ओर देख-देखकर बडे-बूढों के कथनों में काफी सत्यता झलकती हुई नजर आ रही है। वे कहा करते थे, "ऐसे लट्ठ-बहादुरों को भी अभी जन्म लेना है, जो लम्बे बांस से बैंगन उतारा करेंगे।" उस समय का मनुष्य डबलरोटी वाले मोमी लिफाफे मे आसानी से पैक हो जाया करेगा।

ठिगने कद के एक विद्यार्थी ने अपने सुयोग्य और अनुभवी अध्यापक से पूछा, "लम्बे आदमी के खास फायदे कौन-कौन-से हैं ?" अध्यापक ने बताया, "बहुत विस्तार में जाने की जरूरत नहीं। हां, एक ही बात अवश्य गांठ मे बांध लो कि अगर लंबे कद का आदमी ईश्वर न करे पगला जाए, तो लोगो के बच्चे मकान की मुंडेर पर से उतार सकता है।"

सत्ययुग और द्वापर युग मे आम आदमी की उम्र सैकड़ों वर्षों तक पहुच जाती थी। ऋषि-मुनि तो असख्य शताब्दियों तक मजे लूटते रहते थे। जगलो या पहाड़ो के दामन में बहते पानियो के किनारे हसमुख

सखियों के साथ रास रचाने के अलावा अन्य काम-धंधा करना उनकी शान के विरुद्ध था। हमारे भाग्य में आ गया है बुरा कलियुग। इसको कर-युग भी कहा जाता है। जो कोई काम नहीं करता, उसकी कोई पूछ-प्रतीत नहीं, बल्कि ताना दिया जाता है, "काम प्यारा है, चम्म (त्वचा) प्यारा नहीं।" साधु दया सिंह 'आरफ' ने जंग लगी जरीब से नाप कर इस समय के आदमियों की उम्र सौ साल निश्चित कर दी है। बहुत कम बदकिस्मत इस पैमाने पर पूरे उतरते हैं···अधिकांश भाग्यवान तो पांच की दायीं तरफ शून्य लग जाने पर ऐसा अपमान समझते हैं, कि वे धर्मराज की कचहरी में मानहानि का मुकदमा दायर करने के लिए प्रस्थान कर देते हैं। युवा वर्ग महात्मा बुद्ध के सिद्धांत पर डटा हुआ है···कहता है, "दुनिया दुखों का घर है!" दुख से हर कोई मुक्ति चाहता है, इसलिए अपना उल्लू खुद ही सीधा करने के लिए वे कोई न कोई कारनामा कर बैठते हैं या खाक-मिट्टी झुलस लेते हैं···और मां-बाप के दिल को जलाकर बाकी सबको सूली पर लटका देते हैं। उनके लिए न होगा बांस, न बजेगी बांसुरी···हे बांसुरी वाले! यदि आपके समय ऐसा रिवाज नहीं था, तो हमारे ही क्यों मेख ठोंक रखी है।

हमारे भोजन-भंडार में भी मिनी चीजों ने टांगें अटका दी हैं। वह छन्ने (बड़ा कटोरा) और कटोरे लोगों ने फसादों में भांग के भाव फेरी वालों को बेच दी हैं···जिनमें आम गबरू (जवान) डेढ़-दो सेर गुनगुना दूध पी कर फड़कती मांसपेशियों पर गर्व किया करते थे···और खरीद ली हैं छोटी-मोटी चीजें—मिनी टी-सेट, मिनी जग, चुटकी-भर नमकीन दाल रखने के लिए मिनी प्लेटें। मटकी में मथानी डालते समय कंगनी वाले गिलासों में, जो कद-काठ में हाथ-भर लंबे थे, आधा-विलोया या मक्खन-लस्सी पीने का रिवाज अब लगभग समाप्त ही हो गया है। दारू या चाय पीने के लिए छोटी-छोटी कांच की गिलासियां तो आम घरों में देखी जा सकती हैं, पर यह बड़े गिलास नहीं। इनकी अर्थी हमारे घरों में से कब का उठ गयी है। खुशी-गमी या अन्य किसी प्रकार की भी सामाजिक एकत्रता होती, तो बहुत बड़े तवे पर हाथ-हाथ-भर के प्रसादे (फुलके) पकाये जाते थे। अब मिनी एज का युग है। प्रसादे का नाम फुलका रखा

गया···फिर पूरी या कचौरी। इनके आकार और भार का अंदाजा लगाने की जरूरत नही···मुह की भाप से उड जाते हैं। शहरी लोग तो पांच-चार खाकर लवण-भास्कर चूर्ण ढूढ़ने लगते है, ताकि जल्दी हजम हो जायें। आम ग्रामीण और मेहनतकश लोग जिनका एक ग्रास ही बनती है ऐसी पूरी-कचौरी, उनके पेट को गढ़ा कहना कहा का न्याय है ? यह भोले-भाले लोग अगर खाने-पीने मे भी सकोच, शरम या झिझक कर जायें, तो फिर और कौन कहेगा—"चार बार, चार बार इक्का-दुक्का चली आए।"

यदि मिनी एज का अटैक हमारे खाने-पीने पर एटम बम्ब की तरह हुआ है, तो पहनावे पर हाइड्रोजन बम्ब की तरह हुआ है। मिनी स्कर्ट और मिनी ब्लाउज ने शरम-हया की देवी को नगा कर दिया है। जो थोड़ी-बहुत कसर बाकी थी, वह हिप्पियों ने पूरी कर दी है। हिप्पी स्पूतनिक और राकेट युग की उत्पत्ति है। इन्होंने ऐसा कील ठोका है कि देखने वालो को बिना पिए ही चक्कर आ जाता है।

मजक की प्रकृति पर आधारित वनस्पति को हमारे वैज्ञानिक मिनी-से-मिनी करने के लिए डटे हुए हैं। फसलो की कई किस्तो को ड्वार्फ से ट्रिपल ड्वार्फ कर दिया है। अनगिनत किस्म के पौधो को ड्वार्फ करके यह हाल कर दिया है कि बेचारे धरती के बजाय गमलो या प्लास्टिक के लिफाफो में कैद भोग रहे हैं। यदि पीपल वृक्षो का भी ऐसा ही ओवर-हाल कर दिया गया, तो झूला झूलने वाली युवतियों को साधो से तैयार की गयी रगीली रसियों मे गले मे फासी लेकर प्रोटेस्ट करने के लिए अखाड़े मे कूद पडने से गुरेज नही करना पड़ेगा।

मिनी टार्च, हमारी छोटी उगली मे भी आधी चाबियों के छल्ले मे समा गयी है। घड़िया अंगूठियो के नगो मे फिट हो गयी हैं। वायरलेस रिस्टवाचो मे फिट हो चुके है। पाकेट ट्रांजिस्टर की तरह कोट की जेब मे समा सकने वाला टेलिविजन ईजाद हो चुका है। पेन-पिस्टल रखने वाला जब पुराने समय की बीस-पच्चीस फुट लबी बदूको के दर्शन करता है, तो दबगरस सोचने के लिए मजबूर हो जाता है, "इनको चलाना तो एक ओर रहा, उठाकर युद्ध की सभाय रखना भी दिल-गुरदे का काम है।" पेन-पिस्टल की करामात का पता उन ... मगर ... पास पहा

आदमी यों ढेर हो जाता है, जैसे सांप ने डस लिया हो। इन बदूकों के चलने का पता मीलों तक लग जाता था।

बाहरी देशों की युवती हमारी तरह एक आदमी के साथ ही बधे रहना पसंद नही करती। जब किसी ढीठ प्रेमी से छुटकारा पाना हो, लाड-प्यार में ऐसी सिगरेट पेश कर देती है, जिसमे मिनी बंब फिट होता है। सिगरेट सुलगाते ही सिगरेट-बब प्रेमी को सीधा स्वर्ग की ओर भेज देता है···और प्रेमिका किसी और का आलिंगन गर्म करने चल देती है। ऐसे केसों मे इरादा-कत्ल या आत्महत्या आदि कुछ भी प्रकट नही होता। जासूस पाच-सात दिन बरबाद करके केस फायल कर देते हैं।

किसी के कधे पर रखकर बदूक चलाने वाले को हम बड़ा होशियार मानते हैं। पश्चिमी देशों मे इनके भी गुरु घटाल पैदा हो गए हैं। वह अपने कमरे मे ही बैठे-बिठाए लिफाफे के साथ बम पोस्ट करके भेज देते हैं। लेटर-बम के दो ही करतब हैं··यदि मोहर ठिकाने पर लग गयी, तो डाकखाने सहित डाकिया समाप्त हो जाता है···यदि लिखे हुए पते-ठिकाने पर पहुच गया, तो खोलने वाले की कुशलता नही। इस मिनी बम ने हर प्रकार के बमो को मात कर दिया है। जरूरत को आविष्कार की भी जननी माना गया है···जरूरत के समय गधे को बाप बना लेने में हर्ज नही समझा जाता, अस्तु, ऐसे मा-बाप की संतान अभी और कुछ कर गुजरने पर तत्पर बैठी है।

जब किसी राजनैतिक पार्टी से बावली स्त्री की तरह अपना ही बाल संवारे नही जाते···वह गर्व से मिनी बजट पेश करके मिनी प्लान (योजना) गढ देती है। मिनी सेक्रेटरियेट निर्मित किए जाते है। मिनी प्राजेक्ट शुरू किए जाते हैं। मिनी प्लाट लगाए जाते हैं। जिनको अफरा-तफरी पड़ी हो, उनको मिनी बसों द्वारा लाया जाता है। कइयों को मिनी बसों के रूट-परमिट देकर दुहा जाता है। मिनी कालोनियो मे छोटे-छोटे घर खड़े करके कर्मचारियों को दिन मे दफ्तरो मे और रात को इन दडबों में मुर्गियों की तरह घुसाकर निश्चितता की सांस ली जाती है।

कर्मचारी भाइयो से विनती करूंगा कि वह दिल न डांवाडोल करें। घबराहट प्रकट न करें। मीर तकी "मीर" का शेर :

इब्तदा-ए इश्क है रोता है क्या,
आगे आगे देखिये होता है क्या ।

तरन्नुम से गाकर एक-दो गिलास ठंडे पानी के पी लिया करें। मिनी एज मे जिस किसी को सुख भोगना है, जरूरतों को मिनी-माइज करने के लिए कमर कस ले।

हमें हमारे मेहमानों से बचाएं

जगदीश प्रसाद कौशिक

□

छठी श्रेणी से लेकर कालेज तक, मास्टर मिलखी राम से लेकर प्रो० दीनानाथ जी तक जितने भी अध्यापक और प्रोफेसर हमें पढाते रहे, वे सभी नागरिकशास्त्र पढाते समय यह ही पढ़ाया करते थे कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अकेला नही रह सकता। उसे हर काम में हर समय किसी दूसरे आदमी की सहायता की जरूरत रहती है। रिश्तेदार, भाई, बहन मित्र, सब समाज के अंग है। यह व्याख्या उस समय तो ठीक-सी ही लगती थी, लेकिन अब जब समाज के यह ही प्राणी हमारे प्राणलेवा बनने पर तत्पर दिखाई देते है, तो यह कहना पडता है, कि मनुष्य की परिभाषा करने वाला लेखक भी यदि हमारी तरह ही समाज की मेहरबानियों का शिकार हुआ होता, तो अवश्य ही वह यह लिखता कि मनुष्य आदिकाल से जंगलों मे अकेला रहता था। यदि वह अब भी सुखी रहना चाहता है, तो उसको अकेले ही रहना चाहिए। हमे हमारा कीमती जीवन आज के इस विकासशील युग मे भी आदिमानव की तुलना मे दुखी और कष्टों-भरा दिखाई दे रहा है।

हमारे रिश्तेदार तो आटे मे नमक ही कहे जा सकते हैं। मा-बाप हमे बहुत पहले सामाजिक प्राणी अर्थात् अनाथ बनाकर ईश्वर को प्यारे हो गये थे। भाई-बहनों के नाम पर हम सवा लाख (एकमात्र) ही अपने कुल का दीपक है। चाचा और मामा मां-बाप के स्वर्गवास के साथ ही 'कुछ सहायता न करनी पड जाए' की आशंका से किनाराकशी कर गए थे। बस इस प्रकार रिश्तेदारो मे कसम खाने के लिए जोरू के एकमात्र चेहते भाई साहब हैं, जो बम्बई में अपना कोई काला-पीला धंधा करके चादी

बना रहे हैं। कभी-कभार मुलाकात हो जाती है, लेकिन रिश्तेदारों की याद हमारे बिन बुलाए मेहमान, जिनमें हमारे कुछ बचपन के साथी भी हैं, पूरी करते रहते हैं। उनकी इस मेहरबानी और कद्रदानी ने हमारी ऐसी ढिबरी कसी हुई है कि खुदा ही मालिक है।

हम रह तो रहे हैं देश के दिल दिल्ली में, लेकिन दूसरे के दिल में रहते हुए हमारे अपने दिल को दौरे पड़ने लग जाते हैं। सात सौ रुपया महीना तनख्वाह में मकान का किराया, अपना, अपनी धर्मपत्नी और दोनों की गलती के तीन नतीजों की रोटी और कपड़े का प्रबंध ? जरूरतें हमारा मुख चिढ़ाती शैतान की आंत की तरह बढ़ती ही जा रही हैं। महगाई में कोई क्या करे ? ऊपर से मेहमानों के चरणों की धूल हमारा कचूमर निकाल रही है।

इतवार का दिन था। हम सप्ताह-भर की पिछली थकावट दूर करने और अगले सप्ताह के लिए धूप से विटामिन प्राप्त करने के लिए मकान की छत पर चारपाई पर लेटे हुए थे। दरवाजे पर दस्तक हुई। नीचे जाकर देखा। एक महाशय हाथ में अकबर के समय का लोहे का एक छोटा-सा टूटा ट्रंक उठाए खड़े थे। शक्ल-सूरत, शरीर की आकृति और पोशाक से बिल्कुल कमला सर्कस के जोकर लग रहे थे। दरवाजा खुलते ही बोले, "नमस्कार।" इस बम का जवाब एक छोटे-से कारतूस से ही देने की हिम्मत थी। इसलिए हाथ जोड़कर पूछा, "आइए, कहां से पधारे हैं ?" तत्काल दूसरा बम फटा, "वाह, साहब, वाह ! जो सुनते थे, ठीक ही था। कहते हैं, शायर बड़े भुलक्कड़ होते हैं। अजी साहब ! आप पिछले महीने पानीपत मुशायरे पर गए थे न ! आपको जो एक बार सुन ले, कैसे भूल सकता है ? कल यहां एक पेशी है। सोचा, दिन में कहीं लेट न जो हो जाऊं, इसलिए मुशायरा कमेटी के सेक्रेटरी से आपका एड्रेस मिल गया था। खुशकिस्मती है मेरी कि दर्शन तो हो गए। शायरों का क्या भरोसा ? जहां लिखने का मूड बना, वहीं पर ही बैठ गए।" खैर, उनको अंदर लाए, चाय पिलाई और उनके खाने के प्रबंध के लिए सोच में डूबने के अलावा अन्य कोई जरूरी काम अभी दिखाई न दिया। वह चाय पीकर कहने लगे, "मैं जरा घूम-फिर आऊं। आजकल दवाई ले रहा हूं। हकीम

ने रात के खाने मे देसी घी का हलवा बताया हुआ है। तकलीफ तो जरूर होगी, लेकिन मैं अपने प्रिय मित्रों से खुलकर बातचीत कर लेने का आदी हूं। बीमारी न होती, तो दाल-फुलका ही चल जाना था।"

वह चले गए और हमने जैसे-तैसे सारा प्रबंध किया। रात को वह हमारे न चाहते हुए भी हमारी गजलें सुनते रहे। कोई एक बजे हमारा पीछा छोड़ा। उनको अपना बिस्तरा देकर स्वय स्टोर मे जमीन पर लेट-कर फटे कंबल मे रात काटी। सुबह वह नाश्ता करके विदा हो गए और उनकी सेवा के बदले हमें पच्चीस रुपये की थूक लग गई। सोचते थे, न हम शायर होते, न यह बला गले पडती।

२५ जनवरी को दफ्तर जाने लगे, तो श्रीमती जी ने 'आज की ताजा खबर' वाले अखाबार के हाकर की तरह खबर सुनाई, "तनख्वाह का देहात हो चुका है। कल २६ जनवरी है, कोई मेहमान रूपी राक्षस न आ जाए, इसलिए रुपये-पैसे का प्रबंध करके आना।" 'अलखामोशी नीमरजा' चुपचाप दफ्तर चले गए। चार बजे तक फाइलो ने हमारा खून चूसा। हमने उनका अर्क निकाला। चलते समय खजाची से सौ रुपये एडवास मे लिए और साग-सब्जी खरीदकर घर आ गए। दरवाजा खोलते ही पत्नी का कहा हुआ शब्द 'राक्षस' तीन रूप धारण किए एक चारपाई पर बैठा हुआ दिखाई दिया। यह तीन मूर्तिया थीं—हमारे पैदाइशी शहर मलेर-कोटले के तीन महापुरुष, जिनसे हमारी बचपन से थोड़ी-बहुत जान-पहचान थी। वैद्य दुखभंजन सिंह, पडित श्याम सुंदर और मियां नूरु। हमे देखते ही तीनों ने एकदम उठकर हमे यो बांहो मे लपेट लिया जैसे धृतराष्ट्र ने भीम को लपेट लिया था। हमारी दम घुटती देह यो महसूस करने लगी कि हमारे शरीर-रूपी लोकतंत्र को राष्ट्रीय एकता ने जकड़ लिया है। हमारे कानो मे झनझनाहट-सी होने लगी जैसे कोई कह रहा हो, "हिंदू मुस्लिम सिख ईसाई, आपस मे हैं भाई-भाई।" खैर, उनके बाहुपाश से छुटकारा मिला, तो वैद्य जी बोले, "यार! अच्छा दिल्ली आया है? यार-दोस्तों को बिलकुल भूल ही गया है! लेकिन हम तो तुम्हें नही भूले। जैसे-तैसे अपने लगोटिए यार का पता ढूंढ ही लिया है।" "बस, समय नही मिलता।" कहकर हमने सब्जी वाला थैला श्रीमती जी को थमाते हुए,

पूछा, "चाय-पानी पिलाया है कि नहीं?" "इससे पहले कि पत्नी कुछ बोले, पं० श्याम सुदर कहने लगे, "तेरा इतजार कर रहे थे। अकेले तो चाय-पानी रोज ही पीते है।" इतनी देर मे आठ घंटे के बिछडे हुए हमारे बच्चे भी हमारे पास आ गए। मिया नूरू ने प्यार का नाटक रचाते हुए एक का मुख चूमा और थैले से मूगफलियों का लिफाफा निकालकर काके को थमाते हुए कहने लगे, "कैसा शहर है ससुरी का। किसी ने ऐसे निकम्मे रास्ते पर डाल दिया कि कही कुछ काम की चीज मिल ही नही सकी।" पत्नी की भविष्यवाणी अच्छी होने के कारण वह हमें ज्योतिषी प्रतीत होने लगी थी। खैर, जलपान किया गया। रात को सामर्थ्यानुसार खान-पान की सेवा भी की। सिनेमा दिखलाया। अपनी चारपाइयां-बिस्तरे उन्हें दिए। स्वयं सारा परिवार रसोईघर मे घुसकर फटे कंबलो मे सोने-जागने का नाटक सारी रात खेलता रहा। २६ जनवरी आई। जशन दिखलाए। लालकिला, इंडिया गेट, बिरला मदिर, गुरुद्वारा शीशगंज आदि के दर्शन करवाए। रात को फिर सिनेमा मे डेरे लगाए। २७ जनवरी को भोजन खाकर यह त्रिमूर्ति विदा हुई। इधर यह त्रिमूर्ति हमारे रैन-बसेरे से विदा हुई और उधर सौ का नोट हमारी जेब से विदा हो गया।

पिछले दिसंबर मे एक पत्र मिला। खोलकर देखा। बबई से जोरू के भाई का था। लाख-लाख धन्यवाद किया, चलो, याद तो किया। लिखा था, "प्यारे जीजा जी! मुद्दत से आपका कोई पत्र नही मिला। (जैसे स्वयं पत्र लिखता-लिखता थक गया हो) यदि कोई नाराजगी हो तो क्षमा करना। एक कष्ट दे रहा हूं। मेरे एक जिगरी दोस्त अपने बच्चों समेत दिल्ली आ रहे हैं। उनका इरादा तो किसी होटल में ठहरने का था, लेकिन मैंने कहा, अपना घर होते हुए होटल का क्या मतलब? इसलिए उनको मेरा रूप ही समझना। बच्चों को प्यार, बहन जी को नमस्ते!" श्रीमती को पत्र सुनाया। वह सुनकर कुप्पा हो गई। "देखा, आप चाहे कुछ भी कहे, लेकिन मेरा भाई हमे भूलने वाला थोडा ही है।" हम सोच रहे थे, उसने हमारे घर को होटल ही तो समझा है। खान-पान, चारपाई-बिस्तरे की सेवा सब मुफ्त। साला न हुआ, लाट साहब हो गया। यह फौज कब हमला कर दे, क्या पता? यह सोचकर अपना कमरा खाली किया। अड़ोस-पड़ोस

से दो चारपाइयां-बिस्तरे मांगे। साबुन-तेल, तौलिये आदि का प्रबंध किया। साले का मित्र जो हुआ।

एक दिन अचानक दफ्तर में टेलीफोन की घंटी बज उठी। रिसेप्शनिस्ट ने आकर सूचना दी, "आपको स्टेशन में कोई आदमी बुला रहा है," चोगा उठाया, 'हैलो-हैलो' हुई। आवाज आई, "मैं बंबई से आया हूं। आपको मिस्टर राज का पत्र मिल गया होगा। कृपया स्टेशन पर आ जाएं।" चोरबजारिए, रिश्वतखोर और स्मगलर पुलिस का नाम सुन क्या घबराते होंगे, जितना हम घबराए। जोरू के भाई का दोस्त! हुक्म अदूली (अवज्ञा)? तोबा! तोबा!! रहना कहां है? बाकी समय की छुट्टी ली। स्कूटर लिया, और स्टेशन की ओर चल दिए। वेटिंग-रूम में हमारी घर-रूपी छावनी पर हमला करने के लिए सामान बांधे थे। औपचारिक नमस्ते आदि हुई और कुली से सामान उठवाकर स्टेशन से बाहर टैक्सी में रखवाया। साले के दोस्त, उनकी पत्नी, दो बच्चे। पांचवें हम स्वयं। 'पंचों में परमेश्वर' कहावत के अनुसार पांच प्राणी टैक्सी में बैठकर घर आ गए। दोस्त ने उतरकर जेब में से सौ का नोट निकाला। टैक्सी वाले ने नोट देखकर कहा, "बाबू जी, बोहनी ही आपकी की है। सौ का बकाया अभी कहां?"

मेहमान हमारे मुंह की ओर देखने लगे। हमने कहा, "कोई बात नहीं।" और पंद्रह रुपये अपनी जेब से निकालकर टैक्सी वाले को विदा किया। बाकी का सारा दिन मेहमानों की जरूरतें पूरी करने और खान-पान में बिताया। पत्नी, 'मेरे भाई का अपमान न हो', शायद इसलिए ही इन मेहमानों की सेवा में विशेष रुचि दिखा रही थी। दो सब्जियां, दाल, हलवा, पूरी, सलाद न जाने और क्या-क्या उनको खिलाया। मेहमान भी बड़े होशियार थे। सिगरेट मंगवानी हो, तो सौ का नोट। पान की जरूरत हो, तो सौ का नोट। वह सौ का नोट तो न टूटा, पर अगली सुबह तक हमारी कमर अवश्य टूट गई। पूरे साठ रुपये खर्च हो गए।

दूसरे दिन हमने दफ्तर जाते समय उनका प्रोग्राम पूछा। बोले, "बच्चे तो घर ही रहेंगे। हम दोनों बाहर जाएंगे। शाम का खाना जल्दी बना लेना। पिक्चर का प्रोग्राम है।" बच्चे सारा दिन श्रीमती जी को

कठपुतली की तरह नचाते रहे। शाम को खाना खाकर पिक्चर की तैयारी हुई, जिसमें हम सबको भी शामिल किया गया। टैक्सी, टिकटें, वापसी। उनका सौ का नोट सही-सलामत उनकी जेब में था। हमें पचास का चूना लग गया।

तीसरे दिन दोनों पति-पत्नी फिर बाहर गए। श्रीमती कमरा साफ करने गई, तो देखा, बिस्तरों के नीचे केले के छिलकों और सेबों के बीज पड़े हुए मिले। हमने सोचा, सौ का नोट तो सही-सलामत है, फिर यह माल कहा से आ गया? शाम को श्रीमती जी ने बताया, "दोपहर को खाना खाकर दोनों कमरे में बातें कर रहे थे। मैं रसोईघर से बाहर गई, तो सुना। आदमी कह रहा था, 'यह भी कोई जिंदगी है। न काम का मकान, न काम का खाना, औरत ने उत्तर दिया, 'बेचारा मामूली क्लर्क ही तो है।" हमने माथे पर हाथ मारा, "बकरी जान से गई, खाने वाले को स्वाद न आया!" ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद किया, जब चौथे दिन उन्होंने जाने का प्रोग्राम बना लिया। हमने फिर स्टेशन तक सेवा की। उनका सौ का नोट उनकी जेब में, हमारे पंद्रह रुपये टैक्सी वाले की जेब में थे।

एक दिन दफ्तर से घर आए, तो पत्र-पत्रिकाओं के साथ आई डाक में एक और कार्ड मिला। पढ़कर दो मिनट के लिए तो सोचने लगे कि यह मामा जी कौन हैं? हमारे एकमात्र मामा है, और वह हमसे यों दूर रहता है, जैसे हम कोढ़ के रोगी हों। कुछ देर सोचने के बाद खयाल आया, ठीक है, माता जी की अंत्येष्टि पर यह महाशय भी आए थे। लिखा था, "प्यारे भांजे! जीजा जी और बहन रामदेवी के स्वर्गवास के समय ही मिलने का अवसर मिला था। तू शायद न जानता हो, मैं रला राम (तेरे सगे मामा) की बुआ के पुत्र के चाचे का लड़का हूं। कई बार दिल्ली आने का विचार किया, पर ससुरे परिवार के चक्करों में घूमता रहा हूं। तेरा छोटा भाई बड़ा निकम्मा निकला है। तेरी मामी और मुझे तो कुछ समझता ही नहीं। छोटे बहन-भाइयों को भी मार-कुटाई करता है। दिन-भर आवारागर्दी के सिवा अन्य कोई काम नहीं करता। आठवीं में फेल होकर बेकार फिर रहा है। मैं तेरे पास लेकर आऊंगा। दिल्ली में तो

कोई नौकरी मिल ही जाएगी। साथ ही तू तो अफसर लगा हुआ है। आजकल तगड़ी सिफारिश के बिना कौन पूछता है।" पत्र पढकर हसी भी आई और रोना भी। हंसी नये मामा जी की जानकारी पर और रोना एक अन्य मुसीबत गले पड़ने पर। बात आई-गई हो गई, लेकिन किस्मत के लिखे को कौन मिटाए ! पत्र के बाद चार दिन ही बीते थे कि हमारे मामा जी अपने साहबजादे को साथ लेकर हमें सेवा का सौभाग्य प्रदान करने के लिए आ पधारे ! रात को हमारी तारीफों और लाड़ले की बुराइयों के पुल बांधते रहे, "काका ! रिश्तेदारी मिलने-जुलने और लेने-देने से ही होती है। मुझे खुशी है कि तुमने खानदान का नाम चमका दिया है। मेरी बहन और बहनोई की आतमाए स्वर्ग मे खुशियां मना रही होंगी।" फिर अपने साहबजादे को डांटते हुए बोले, "नालायक ! एक तुम हो कुलकलंकी ! यह तुम्हारा भाई लाखों में एक है। कुत्ते ! इसका पल्लू पकडेगा, तो पार हो जाएगा।" मामा जी उसको कोई नौकरी दिलवाने की आज्ञा देकर चौथे दिन चलते बने। हमें गले पडा ढोल बजाना पड़ा। अपने दफ्तर में ही अफसरों की याचनाएं करके मामे के पुत्र को चपरासी लगवा दिया। अपनी बदनामी से बचने के लिए अपना एक सूट भी उसे दे दिया। खान-पान और रहने के लिए तो हमारी धर्मशाला खुली हुई ही थी।

एक दिन दफ्तर वालो ने एक हजार रुपये बैंक मे जमा करवाने के लिए उसे देकर भेजा। एक, दो, तीन, आखिर चार बज गए, लेकिन उसके नही आना था, न आया। हमारी जान कुड़की मे आ गई। जिम्मेदारी जो हमारी थी। जेल का दरवाजा दिखाई देने लगा। रो-पीटकर अपने मासूम और निर्दोष बच्चों के भविष्य का वास्ता डालकर अफसरो की याचनाएं की। आखिर सौ रुपये महीना हमारी तनख्वाह में से काटने का फैसला हुआ। मामा जी को कई पत्र लिखे, लेकिन न हमारे पत्र का उत्तर आया, और न ही मामे का पुत्र ! अब हमारी किस्तें कट रही हैं। प्रिय पाठकगण ! आप ही बताइए कि यदि हम यह कहें कि 'हमे हमारे मेहमानों से बचाए', तो बुरा क्या है ?

मेरी तोवा, मैं कवि-सम्मेलन नहीं कराऊंगा

दलीप सिंह भूपाल

□

कठिन घड़ियों में से गुजरकर सीधी राह पर आने वाले दर्जनों आदमियों से आपने ऐसी कसमें अवश्य सुनी होंगी :

मेरी तोबा : मैं शराब नहीं पीऊंगा।

मेरी तोबा : मैं जुआ नहीं खेलूंगा।

मेरी तोबा : मैं जेबें नहीं काटूंगा। आदि-आदि।

लेकिन ऐसी कसम आपने कम ही सुनी होगी :

मेरी तोबा : मैं कवि-सम्मेलन नहीं कराऊंगा।

वास्तव मे यह मेरी अपनी तोबा है, लेकिन मैं यह तोबा क्यों कर रहा हूं इसकी पृष्ठभूमि मे हास्यपूर्ण और हास्यहीन घटनाओं की लम्बी शृंखला है। लीजिए, इनमे से कुछ एक घटनाएं सुनने के लिए आप भी तैयार हो जाइए।

तेरहवीं कक्षा में पढ़ते हुए मेरी शादी हो गई थी, जिसका अब सिलवर-जुबली वर्ष चल रहा है। बी० ए० पास करते ही घरवालों ने घोषणा कर दी, "अब हमारा पीछा और घर दोनों छोड़ दो। जहां मर्जी हो, जाओ। कमाओ और खाओ।" लेकिन जनाब, इतनी जल्दी ! एकदम नौकरी तलाश करना विवाह करवाने जितना आसान काम तो नहीं था। इसलिए रोटी की चिंता हो गई। अकेला आदमी ऊंट की पूछ जैसा होता है, दोस्तों-रिश्तेदारों और सगे-सबंधियों के यहां एक-एक रात भी बिताता, तो मुफ्त-मुफ्त में दो-ढाई वर्ष आसानी से गुजर सकते थे। नौकरी ढूंढने की कोई जल्दी नहीं होनी थी, न चिंता। लेकिन अब कर्मों वाली

(पत्नी) को साथ-साथ घसीटते फिरना न मुझे अच्छा लगता था और न ही उस बेचारी को। हमें शेरो-शायरी का चस्का तो बचपन ही से था। अनेक कविजन हमारे जिगरी दोस्त थे। उस समय देशभक्ति का आन्दोलन पूरे यौवन पर था। लोग कवि-सम्मेलन को बड़ा पसंद करते थे। इसलिए हमें विचार सूझा, क्यों न कवि-सम्मेलन करवाए जाएं? इस प्रकार हमारा स्टेज-सेक्रेटरी बनने का शौक भी पूरा हो जाएगा।

एक दिन बैठे-बिठाए अपना हिसाब लगाया, यदि एक कवि-सम्मेलन की औसत चार हजार रुपये की टिकटें बिकें, तो सारे खर्च निकालकर कम-से-कम दो हजार रुपये आसानी से जेब में आ सकते हैं। वर्ष-भर में बारह कवि-सम्मेलन, चौबीस हजार रुपया।

और यदि इस प्रकार पांच वर्ष भी निर्विघ्न लग जायें, तो एक लाख बीस हजार रुपये छलांगें लगाते हुए आएंगे। हींग लगे न फटकड़ी, रंग चोखा आए। तब भाव बहुत सस्ते थे। सोचा, वारे-न्यारे हो जायेंगे। हमारे पास क्या नहीं होगा। कोठी, कार, टेलीफोन, नौकर-चाकर और जीवन की मुंह-मांगी सब सुख-सुविधाएं। बीवी को साड़ियां-सूटों और गहनों से लाद देंगे। हाई सोसाइटी में मूव करेंगे। बड़े-बड़े मंत्रियों के साथ डिनर होंगे। फोटो उतारे जायेंगे। फिल्मी रीलें तैयार होंगी। वाह, भई, वाह!

यह सोचते ही हमने तुरंत पहले कवि-सम्मेलन का विज्ञापन छपवा दिया। फिर दूसरा कवि-सम्मेलन, फिर तीसरा कवि-सम्मेलन। और पच्चीस वर्षों में असंख्य कवि-सम्मेलन करवाये, लेकिन हमारी आशाएं-आकांक्षाएं अधूरी ही रहीं। हमारे साथ तो लगभग यही हुआ है:

न खुदा ही मिला, न विसाले सनम,
न इधर के रहे, न उधर के रहे।

पहले कवि-सम्मेलन में, हमने अपनी समझ से काफी प्रसिद्ध कवि बुलाये। स्टेज पर तीन-चार कवि तो खूब जमे। लगा, हमारी अच्छी धाक बैठ रही है, लेकिन अगले कवि ने एक बड़ा ही ऊट-पटांग शेर इस

कुएं में जाता ढोल भला, रे ढोल भला

इस पर खूब वाह-वाह हुई। क्या मिसरा-ए-अव्वल है जी। और जब उसने मिसरा-ए-सानी यानी दूसरा जोड़कर शेर कहा

कुएं में जाता ढोल भला, रे ढोल भला
कुएं से आता ढोल भला, रे ढोल भला

तो दुर फिटे मुंह (लाखों धिक्कार!) 'क्या बकवास है जी' की आवाजें आनी शुरू हो गयी। हमारे हाथों के तोते उड़ने लगे। झटपट हमने अगले कवि को बुला लिया। उसने शेर के पहले मिसरे से ही श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। हमारी जान मे जान आई। कहने लगा :

इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर

श्रोताओं में से दाद आई, "वाह भई, वाह! क्या काफिया रदीफ है। बहुत बढिया यमक अलकार पेश किया है। अत्तर-अत्तर, अत्त-अत्तर, अत्तर", और उन्होंने दूसरा मिसरा सुनने के लिए कान खड़े किये। कवि बोला :

इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर,
पंचहत्तर, छिहत्तर, सतत्तर, अठहत्तर

और उकताए हुए श्रोताओ ने गले-सड़े अडे, टमाटर और चपल्लें दे मारी। हम स्टेज-सेक्रेटरी थे और सबसे आगे बैठे हुए थे। इसलिए बहुत कुछ हम पर ही बरसा। गले-सड़े अंडे और टमाटरों ने क्या काम आना था, चपल्लें भी एक-एक पैर, और अलग-अलग नम्बरो की होने के कारण किसी काम न आ सकी। बेहद शोरगुल मच गया। कुरसिया फेंकी जाने लगी और अंत में हमे मजबूरन कवि-सम्मेलन बीच मे बंद करना पड़ा। खिन्नावस्था में हमने निश्चय किया कि कम-से-कम उन महीनों मे कवि-सम्मेलन नही कराया जाएगा, जब अंडों और टमाटरो के गलने-सड़ने का सीजन होगा।

एक अन्य कवि-सम्मेलन मे लगभग पाच हजार श्रोताओ का समूह था। बड़ा उत्साह मिला, चलो, पांच हजार मे से यदि हजार मुफ्तखोर,

सिफारिश वाले, रिश्तेदार और कवियों के चेले-चांटे निकाल भी दें, तो बाकी प्रत्येक श्रोता ने कम-से-कम यानी दो रुपये वाली टिकट भी ली हो, तो भी सीधा आठ हजार कमाया जाएगा और खर्च जितना मर्जी शाहाना करें, तीन हजार रुपये से ज्यादा नहीं हो सकता। इस प्रकार सीधा पांच हजार बच जाएगा। खुशी से फूले न समाते हुए हमने टिकट वाले क्लर्क को बिक्री के बारे में पूछा, तो वह खिन्न-से स्वर से बोला, "केवल ४५० रुपये के टिकट बिके हैं।" सुनकर हमारी आंखों के सामने तारे नाचने लगे। पैरों तले से जमीन खिसक गई। गजब खुदा का. इतने मुफ्तखोरे ! वे न जाने कौन-सी सुलेमानी टोपियां पहनकर प्रबंधकों की आंखों में धूल झोंककर पंडाल में आ घुसे थे। घोर उदासी की अवस्था में जी चाहा कि बहाना गढ़कर कवि-सम्मेलन न करवाने का ऐलान कर दें, लेकिन फिर सोचा, कहीं मुशायरे के बजाय मुजाहिरा ही न हो जाये। इसलिए दिल पर पत्थर रखकर कवि-सम्मेलन शुरू करवा दिया। दुकानदारों के बिल चुकाने में हमारा घर बिक गया था, लेकिन शौक का कोई मूल्य नहीं होता है। सो, हमने भी हिम्मत न हारी। कवि-सम्मेलन करवाने का अपना चस्का जारी रखा।

एक कवि-सम्मेलन में कवि ने अपनी आजाद कविता यों शुरू की :

> नयन तेरे गोरी के,
> जैसे भूरी भैंस के सींग,
> हवा चली झड़ जायेंगे,
> गुजरे जिस राह से ?

श्रोताओं में हंगामा मच गया। कहने लगे, इसके अर्थ क्या हुए ? कवि और मैं, हमने बहुतेरा समझाया, "भई, ऐसी कविताओं के प्रकट अर्थों की ओर नहीं, गुप्त अर्थों की ओर देखा जाता है···" लेकिन लोग न माने। तब कवि ने स्वयं को संभालते हुए एक अन्य कविता जवानी सुनानी शुरू कर दी, जो उसे पूरी तरह याद नहीं थी। आकाश की ओर मुंह उठाकर बड़े कातिलाना अंदाज में बोला, अर्ज किया है :

ए चांद-सितारो···

मैंने कहा जी,

ए चांद-सितारो···

हां जी, शेर है जी···

ए चांद-सितारो···

और आगे उसको कुछ याद नहीं आ रहा था। श्रोताओं में से एक ने खीझकर एक पत्थर मारा। तब मौका-शनास कवि ने इस प्रकार शेर पूरा कर दिया :

ए चांद-सितारो
क्या करते हो प्यारो
यों पत्थर तो न मारो

इस पर थोड़ा-सा हास्य का वातावरण बन गया, लेकिन इसी कवि-सम्मेलन की एक अन्य आजाद कविता मुलाहिजा हो :

मेरे घर के पास ही
न भौंकती है, न बोलती
छोटे-छोटे पायंचों पर
भार अपना तोलती
काली-सी, दुर्बल-सी,
कुतिया निगाहिये पीर की
मैं पूछता हूं दुनिया के लोगो !
बोलो, डाकुओ, लुटेरो, चिंतन के ठेकेदारो
जल्दी करो, बोलो, बताओ, यह किसका प्रतीक है ?

इस पर न केवल श्रोताओं ने ही हंगामा किया, बल्कि कविजन भी आपस में गुत्थम-गुत्था हो गए। कहने लगे, "यह नामुराद कविता लिखने लगे हैं। सालो, इससे अच्छा था, बूट-पालिश कर लिया करो।"

एक बार एक कवि महोदय केवल इस बात से हमारे साथ नाराज हो गए, भई, मैंने कवियों के स्वागत के समय उनको हार दूसरों की अपेक्षा

थोड़ा-सा छोटा डाल दिया था। गुस्से से छटपटाते हुए वह कवि-सम्मेलन में से वाक-आउट कर गए थे। अपनी फीस वह एडवांस ले चुके थे। मैं करता, तो क्या करता ?

एक अन्य अवसर आया, जब मैं बहुत बढ़िया क्रम से कवियों को बुलाता जा रहा था। सोचा, वैराइटी बनी रहने से श्रोताओं की रुचि बनी रहेगी। सातवें नम्बर पर मैंने जिस कवि का नाम बोला, वह कुछ इस प्रकार बड़बड़ाता हुआ स्टेज पर से छलांग मार गया, "मैं इन छह कवियों से सीनियर कवि हूं। यह तो मेरी चिलमें भरते रहे है। आपने मुझे सातवें नम्बर पर बुलाकर मेरा बड़ा भारी अपमान किया है। मैं तो सोचता था, भई, उद्घाटन की कविता मुझसे पढ़वाई जाएगी। दुर फिटे मुह (धिक्कार), ऐसे प्रबंधकों के स्टेज-सेक्रेटरी पर !" फीस उन्होंने भी अग्रिम ले ली थी। मैं इनका भी क्या इक्का सड़क से नीचे उतार देता ?

इस प्रकार प्रधानगी करवाने के लिए शोर। स्टेज पर कवियों को आगे-पीछे बिठाने पर हंगामा। सेवा करते समय शोर। विदाई समय भी हंगामा। और तो और, यदि किसी कवि से कोई आटोग्राफ न लेता, तो वह मेरे गले पड जाता। कहता, "आपने लोगों को इस प्रकार क्यों नही सिखाया, भई वह मुझसे आटोग्राफ लेते।"

मैंने क्या कमाया ? मुझे अपनी एक गजल के दो शेर याद आ रहे हैं :

> मादी इस जगत मे आकर,
> कमाया कुछ नही, केवल गंवाया
> उलटम-पुलटम इस जगत मे
> मुझे जीना रास न आया।

और अब असफल अनुभवो की पच्चीसवी गांठ के शुभावसर पर आपके साथ यह भेद साझा करने मे मुझे कोई संकोच अनुभव नही होता कि कार, कोठी, नौकर-चाकर तो एक ओर रहे, मैं अपना पुश्तैनी खस्ता-हाल मकान भी बेच चुका हूं। बीवी सख्त नाराजगी और निराशा की अवस्था में बच्चों की लंबी कतार मेरे लिए छोड़कर मायके को जाने की

धमकियां देती रहती है, और इधर हमारी दुरवस्था को देखकर कोई छोटे-से-छोटा आदमी भी मेरे साथ बात करने से कन्नी काटता है। जो कहते थे, "रहेंगे दूध बनकर, पानी से भी पढ़ गए पतले"। नीली छतरी वाले का कोटिश. धन्यवाद हैं, भई छोटी-मोटी नौकरी मिल गई थी, जिससे केवल दाल-रोटी ही चलती है।

और साथियो, अब मैं बिलकुल थक-हार गया हूं। लखपति बनने के सपने छोड़ दिए हैं। इसलिए स्टाम्प-पेपर पर लिखकर ऐलान करता हूं, "मेरी तोबा ! मैं कवि-सम्मेलन नहीं करवाऊंगा।"

निमंत्रण-पत्र मिलने के बाद

दलीप सिंह जुनेजा

□

कहते हैं, "बिना बुलाए तो भगवान के घर भी नही जाना चाहिए", यदि अपने-आप चले जाएं, तो लोग उलाहने देते हैं, "सदी न बुलाई, मैं लाड़े की ताई" (पंजाबी कहावत)। यही कारण है कि आजकल छोटे-से-छोटा फंक्शन हो या बड़े-से-बड़ा, मेजबान अपने मेहमानों को बाकायदा लिखित रूप में निमंत्रण-पत्र भेजता है। चाहे किसी का जन्मदिन हो या मरण-दिन। मगाई हो या विवाह। बिल्डिंग की नींव-पत्थर रखना हो या गृह-प्रवेश हो। स्कूल या कालेज का पुरस्कार-वितरण समारोह हो या पुस्तक-विमोचन समारोह। कोई गोष्ठी हो या सेमीनार! बात क्या, निमंत्रण-पत्र भेजना और प्राप्त होना बहुत जरूरी है। यों जबानी चाहे आप कितनी बार कहें, लेकिन निमंत्रण-पत्र मिले बिना मेहमान को यकीन-सा नही आता।

कहते हैं, आग का जला छाछ फूंक-फूंककर पीता है। एक बार हमने अखबार में एक समारोह का विज्ञापन पढकर उस समारोह मे जाने की गलती की। वहां जाकर हाल में सबसे पहली कतार में बैठ गए। प्रबंधकों को बहुत श्रोताओं के आने की आशा नहीं थी। जब श्रोता आशा से अधिक आ गए, तो प्रबंधको ने चेकिंग शुरू कर दी और बिना निमंत्रण-पत्र के आए हुए सभी व्यक्तियों को हाल से बाहर निकाल दिया। उस समय मे हमने कसम खाई कि जब तक औपचारिक रूप मे निमंत्रण-पत्र न मिले, हमें घर से बाहर कदम नही रखना।

आज भी जब मैं दफ्तर से घर पहुंचा, तो मेरी डाक मे पांच-छह निमंत्रण-पत्र आए हुए थे, क्योंकि अगले सप्ताह तीन छुट्टियां एक साथ

आ रही थी। इसलिए लोगों ने छुट्टियों का लाभ उठाते हुए अपने कार्यक्रम तय कर लिए थे। मेरे लिए यह स्थिति बहुत ही कठिन थी कि किस निमंत्रण-पत्र को स्वीकार करूं और किसको नजरअंदाज कर दूं। चाय का प्याला पीते हुए निमत्रण-पत्रों पर सरसरी-सी नजर डालनी शुरू की। पहला निमत्रण-पत्र काले हाशिये वाले कार्ड का था, यह तो किसी के मरने की खबर है। हैं ! यह तो मेरे उस शहर का कार्ड था, जहा से मैं पिछले साल बदलकर आया था। बडा अफसोस है। नौजवान आदमी की कुसमय मौत हो गई है। चलो, ईश्वर की मर्जी यही है। मेरे वहा जाने से क्या अतर पड जाएगा। मरने वाला तो बेचारा मर गया। इतनी दूर जाने के लिए पचास रुपये आने-जाने पर जाएंगे। चलो, छोड़ो। अफसोस की चिट्ठी लिख देंगे।

दूसरा निमंत्रण-पत्र उठाया, तो यह विवाह का कार्ड है। मेरी घर-वाली की भाभी की भांजी का विवाह है। यह भी खर्च आ पडा है।

"मैंने कहा, सुनती हो !" मैंने अपनी पत्नी को आवाज दी, जो रसोईघर मे सब्जी काट रही थी।

"हां, बताइए जी !"—मेरी पत्नी हाथ मे चाकू पकडे आकर कहने लगी।

"यह तुम्हारी भाभी की भांजी के विवाह का निमंत्रण-पत्र है।"

"फिर क्या सलाह है आपकी ?"

"ठहर जाओ। सोचकर बताते हैं। अगर वहा न जाया जाए, तो कोई हर्ज न होगा !"

"हा जी, मेरे रिश्तेदार आपको किसलिए अच्छे लगेंगे !"—उसने भौंहें चढ़ाकर उलाहना दिया।

"यह बात नही। देख लो, लड़की का विवाह है। दो सौ रुपये कम-से-कम लग जाएंगे और तुम्हारी साड़ी इस बार फिर रह जाएगी।"

"जैसे आपकी मर्जी हो, करें !"—इतना कहते हुए उसने अपनी सहमति-सी दे दी।

"बाद में मिलें, तो कह देंगे, आपका कार्ड नही मिला था। इतनी लबी रिश्तेदारी नही निभाई जाती।"—कहते हुए मैंने अगला कार्ड उठा

लिया। यह एक दोस्त के लड़के के जन्मदिन का था।

"लो, यह भी खर्च वाला काम ही है। जन्मदिन पर जाएंगे, तो क्या खाली हाथ जाएंगे?"—मैंने दलील दी।

"यों कीजिए, बधाई का तार दे देते हैं!" मेरी पत्नी कहने लगी।

"हां, यह तुमने लाख रुपये की बात कही है। यों लगता है कि तुम पहले से कुछ अधिक ही समझदार हो गई हो।"

अगला निमंत्रण-पत्र उठाया। यह एक साहित्य-सभा की ओर से करवाए जा रहे कहानी-दरबार में शामिल होने के बारे में था। "छोड़ो जी, लेखक तो भूखे-नंगे होते है। चाय का प्याला पिलाकर चलता करते हैं। और कहेंगे, कहानी-दरबार करवा रहे हैं!"

आह, अगला कार्ड! वाह क्या कहने! शिक्षा विभाग की ओर से गोष्ठी करवाई जा रही है। श्रोता के रूप में पहुंचें। एक सौ रुपया मिलेंगे। "यह हुई न कोई बात!"

"सुनती हो! मैं तो अगले सप्ताह जालंधर जा रहा हूं। मेरा सूट प्रेस करवा देना! यह पकड़ो बाकी के निमन्त्रण-पत्र। रख छोड़ो कहीं। सुबह अंगीठी में ईंधन के काम आएंगे।" और बाकी के निमंत्रण-पत्र मेज से उठाकर मैंने पत्नी के हाथ में थमा दिए।

पुस्तक-विमोचन समारोह

जसवन्त सिंह कंवलवी

□

कहते हैं, विधवा तो वैधव्य बिता लेती है, लेकिन छड़े (कंवारे) उसे वैधव्य काटने नही देते। यह बात बिलकुल ठीक लगती है। कागज काले करने का शौक हमे शुरू से ही रहा है। दोस्तों-मित्रों के बहकाने पर हमने धीरे-धीरे कुछ-न-कुछ पत्र-पत्रिकाओं को भेजना शुरू कर दिया। शुरू-शुरू मे कुछ रचनाएं खोटे सिक्के की तरह वापस भी आईं, लेकिन हमने हौसला बुलद रखा। सोचा, अभ्यास रूपी चप्पू के सहारे कभी तो हमारी नाव भी किनारे लगेगी। बाबा फरीद की चेतावनी के बावजूद, काले लेख लिखते चले गए और लिफाफों मे बंद कर-करके संपादकों पर गोलाबारी करते रहे। आखिर कुछ-न-कुछ रंग निखरना शुरू हुआ, क्योंकि सपादकों को खुश करने के लिए हमने सारे दांव-पेच इस्तेमाल किए। उनके सपादकीय के गुण-गान किए। पत्र-पत्रिकाओ के चदे भिजवाए। एकाध रचना छपनी शुरू हो गई। जब कोई रचना छप जाती, हमे यों प्रतीत होता, जैसे दुनिया-भर की सारी दौलत हमे ही मिल गई हो। वह रचनाएं हम उत्साह से मुफ्तखोरे दोस्तों को दिखाते। कई तो पढने के लिए ही माग लेते, जो गगा गई हड्डियो की तरह फिर वापस नही लौटती। धीरे-धीरे हमारी गिनती लोक-लेखको मे होने लगी।

दोस्तो ने (सही अर्थों मे दुश्मनों ने) हमे परामर्श दिया कि प्यारे, अब तुम्हे अपनी रचनाओ को पुस्तक-रूप देना चाहिए। पुस्तक छपने पर ही लेखक चर्चा का विषय बनता है और प्रतिष्ठा की ओर कदम उठाता है।

बस जी, हमारे दिमाग मे यह कीडा कुलबुलाने लगा कि किसी-न-

किसी प्रकार हमारी भी पुस्तक छपे और हमारा नाम भी नानक सिंह, गुरबख्श सिंह की तरह चमक उठे। अस्तु, हमने झटपट पाडुलिपि टाइप करवा ली। फिर अच्छे-अच्छे स्थापित लेखकों, प्रोफेसरों, डाक्टरों के साथ जान-पहचान बढ़ाने के लिए अपनी जेब हलकी करने लगे, ताकि उनमें अपने पक्ष में भूमिका और कुछ मत लिखवा सकें। कइयों की सेवा मे तो हम लाल परी लेकर पहुंचते रहे।

भाग-दौड़कर हम भूमिका सहित कुछ मत लिखवा लेने में सफल हो गए, लेकिन असल समस्या तो अभी ज्यों की त्यों कायम थी।

पुस्तक प्रकाशित कौन करे? इसके लिए किसी प्रकाशक की तलाश जरूरी थी। हमने पुस्तक छपवाने के लिए सिर-धड़ की बाजी लगाई हुई थी। अस्तु, अमृतसर, जालंधर, दिल्ली घूम-फिरकर कई प्रकाशकों के द्वार खटखटाए, लेकिन कहीं से भिक्षा न मिली। अपनी पुस्तक छपवाने के लिए न तो हमारे पास पौंड-डालर थे, न ही हम कोई ऊंचे अफसर या अधिकारी थे। हम तो केवल एक साधारण-से लेखक थे। पहली बार हमें प्रकाशकों के मगरमच्छ रूप के साकार दर्शन हुए। हमें यह कहकर टाला गया, "अजी! पंजाब में पुस्तकें पढ़ता ही कौन है? हम तो पहले ही पुस्तकें छापकर बड़े दुखी हैं। यदि आप स्वयं पैसे खर्च कर सकते हैं, तो देख लेते हैं। पन्द्रह सौ रुपये खर्च आएगा। पैसे जमा करवा दें "

यह पूछने पर कि पैसे वापस कैसे करेंगे? उत्तर मिला, "यारों-दोस्तों में बांटने और पढ़ने के लिए कुछ प्रतियां मिल जाएंगी। पैसे लौटाने की बात न छेड़ें। यों लगता है कि आप लेखक नहीं है, बल्कि किसी की पाडुलिपि चोरी से उठा लाए हैं। हमारे पास कभी किसी असली लेखक ने पैसे नहीं मांगे। यदि लेखक में कुर्बानी का माद्दा न हो तो उसे खाक लेखक बनना है!"

बात क्या, द्वार-द्वार भटकने के बाद हमारी मुलाकात एक टूटे-से लेखक-प्रकाशक मास्टर मद्दिम लाल जी से हो गई। वह समाजवादी विचारधारा के अलम्बरदार और राजनैतिक क्षेत्र में भी मुंह मारने वाले व्यक्ति थे और चंडीगढ़ से प्रकाशित होने वाले छमाही पत्रिका 'लकीरें' के सम्पादक थे। आठ सौ रुपये में उनके साथ सौदा तय हो गया, लेकिन

जल्दी ही ही हमें उनके समाजवाद का आभास हो गया। पंद्रह-बीस चक्कर लगाने के बाद जब हम मरने-मारने पर आए, तब जाकर उन्होंने पुस्तक प्रेस में दी। बात क्या, वर्ष-भर खराब होने और भाग-दौड़ करने के बाद पुस्तक छप गई। प्रेस वालों को कुछ पैसे देकर हमने वहां से बीस-पच्चीस प्रतियां प्राप्त कर ली, ताकि अपनी पुस्तक को छाती से लगाकर दिल ठंडा कर सकें। यारों-दोस्तों को जब पता चला, तो उन्होंने कहा, "पुस्तक छापकर घर में रख ली है। इसका विमोचन-समारोह कब कर रहे हो?"

"विमोचन-समारोह की क्या जरूरत है? पुस्तक छपनी चाहिए थी, सो, छप गई है।"

"वाह रे भोंदू! जब तक पुस्तक विमोचन-समारोह करके किसी प्रसिद्ध लेखक या प्रख्यात राजनैतिक नेता के करकमलों द्वारा इसका विमोचन नहीं कराएगा, तब तक इसकी साहित्यिक क्षेत्रों में पूछ-गछ कैसे होगी? पुस्तक पर किसी आलोचक से परचा पढ़वा। फोटो अखबारों में छपे। लोगों में चर्चा हो, तो पता चले कि अमुक लेखक की पुस्तक छपी है।" पहली बार ही पता चला कि जैसे जवान बेटी के लिए वर-घर की जरूरत होती है, उसी प्रकार छपी पुस्तक का भी विवाह रचाना जरूरी होता है।

खैर, ओखली में सिर दिया, तो मूसलों से क्या डर? दोस्तों के महान कथनानुसार हम इस काम के लिए रजामंद हो गए, लेकिन पुस्तक विमोचन के लिए कौन-से प्रसिद्ध व्यक्ति को बुलायें और निमंत्रण-पत्र किस-किस को भेजें? बड़ी गंभीर समस्या थी, लेकिन 'जहां चाह, वहां राह' के कथनानुसार इस सारे समारोह की जिम्मेदारी हमारे मित्र 'साहित्यधारा' के प्रधान तोता सिंह 'पंछी' ने अपने जिम्मे ले ली।

पांच सौ रुपये साहित्यकारों के जलपान, फोटोग्राफर, माइक आदि के खर्च के लिए पंछी जी ने हमसे जमा करवा लिए। कार्यक्रम बनाकर समारोह आयोजित कर दिया गया। चंडीगढ़ के प्रसिद्ध आलोचक डाक्टर प्रकाश सिंह 'अंधेरा' को पुस्तक-विमोचन करने के लिए बुलाया गया। अखबारों में से सूचना पढ़कर छोटे-मोटे सैकड़ों लेखक एवं आलोचक मुंह लटकाए छाताधारियों की तरह उतरने शुरू हो गए। कस्बे के हाई-

स्कूल मे, जहां समारोह हो रहा था, विवाह जैसी चहल-पहल हो गई।

प्रमुख अतिथि के पहुंचते पर उनको हारों से लाद दिया गया। फोटो उतारे-उतरवाए गए और 'पंछी' जी ने कर्रवाई शुरू की। पहले पहुंचे दर्जन-भर कवियों-कवयित्रियों ने कविताएं पढ़ी। बाद मे प्रमुख अतिथि ने पुस्तक-विमोचन किया और फरमाया :

"इस पुस्तक का विमोचन करके मुझे बडी खुशी हो रही है। यद्यपि अतिव्यस्तता के कारण मैं यह पुस्तक पढ़ नही सका, तथापि इस बारे मे मैं अंधेरे मे नही हूं, क्योंकि मेरा नाम प्रकाश सिंह है। अस्तु, मुझमे पूरा-पूरा प्रकाश है। इसमें लेखक ने जीवन के यथार्थ को बड़ी सूझ-बूझ और दिलेरी के साथ चित्रित किया है और समाज को नयी दिशा प्रदान की है। इसमे कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक वाले सभी गुण और तत्त्व विद्यमान हैं। *निश्चय ही साहित्य मे यह एक मील-पत्थर सिद्ध होगी।* मैं लेखक को उसकी इस उत्कृष्ट रचना के लिए हार्दिक बधाई देता हू और आशा करता हूं कि लोग इसको आंखे मूंदकर पढ़ेंगे।"

एक हिप्पी-रूपी साहित्यकार ने, जिसने आंखो पर खोपे चढाए हुए थे, उठकर फरमाया, "जनाब! मील-पत्थर न कहें। अब फासला मीलों में से नही, *किलोमीटरों मे मापा जाता है, इसलिए किलोमीटर-पत्थर* कहिए।"

एक अन्य आलोचक ने फरमाया, "पुस्तक काफी मोटी है। इसलिए इसमें समाज के बारे में मोटी-मोटी जानकारी लेखक ने एकत्र की है। मोटी अक्ल वाले लेखक ही मोटी पुस्तकें लिखते है। मिनी युग मे मोटी पुस्तक और मोटी औरत को पसद नही किया जाता। लेखक ने इसकी कीमत दस रुपये रखी है। महंगाई के इस युग में इसकी कीमत बहुत अधिक है। इससे पता चलता है कि लेखक अधिक पैसे कमाकर अमीर होने की लालसा रखता है और उसका दृष्टिकोण प्रोलेतारी नही है। अस्तु, यह पुस्तक गरीब मजदूरों को क्या संवार सकती है? लेखक को अपना संबंध झुग्गी-झोंपड़ियों के साथ जोड़ना चाहिए। बुर्जुवा श्रेणी लेखकों को खरीद लेती है। लेखक को बिकाऊ माल नही होना चाहिए। कामरेड माओ का फरमान है…"

कामरेड आलोचक के बाद एक अन्य दुबले-से डाक्टर-रूपी विद्वान ने फरमाया, "इस पुस्तक के छपने से लेखक पहले दर्जे के साहित्यकारों की पंक्ति में आ खड़ा हुआ है। आज हम पश्चिमी देशों के साहित्यकारों के मुकाबले में ऐसी रचनाएं बड़े गर्व से रख सकते हैं। इनमें अमुक-अमुक वाद हैं। इसमें आधुनिक मनुष्य का आधुनिक अनुभव व्यक्त किया गया है। साहित्य अकादमी को चाहिए कि ऐसी पुस्तकों को बिना पढ़े ही पुरस्कार दे दे।"

समारोह की कार्रवाई समाप्त होने के बाद सभी साहित्यकार चाय की मेजों के गिर्द आ जमा हुए और बर्फी-रसगुल्ले का कत्ले-आम करने लगे। पूरी तरह मैदान साफ करने के बाद कुछ एक तो उतावली का बहाना करके जल्दी बस या गाड़ी पकड़ने के लिए विदा हो गए, लेकिन बहुत-से अभी भी इधर-उधर मंडरा रहे थे।

'पंछी' जी ने मुझे बुलाया और मेरे कान में कहा, "यार! डा० 'अंधेरा' जी को आने-जाने का किराया आदि पचास रुपये देने का वायदा किया था। पैसे तो ससुरे सारे ही खर्च हो गए। पचास रुपये निकालना जरा! डाक्टर साहब को विदा करके फिर कोई काम-धाम करते हैं।"

पचास का नोट लेकर 'पंछी' जी 'अंधेरा' जी को छोड़ने रिक्शा लेकर बस-अड्डे की ओर नौ-दो-ग्यारह हो गए। पीछे बचे-खुचे लेखक रात को घूंट-भर पीने के लिए हमें यों घेरे हुए खड़े थे जैसे पुलिस ने किसी स्मगलर को घेरा डाला हो। समारोह देखकर मेरी आंखों के सामने गहरा अंधेरा फैलता जा रहा था और धरती पूरी गति से घूमती हुई प्रतीत हो रही थी।

हम भूमिका लिखवाने गए

निरंजन शर्मा सेखा

□

भूमिका लिखने वाले तो अनेक विद्वान थे, जैसे कि प्रिंसिपल संतसिंह सेखों, प्रिंसिपल सुजान सिंह, डा० गुरनाम सिंह तीर, कन्हैयालाल कपूर और बीबी अमृता प्रीतम जी आदि, लेकिन हमने सोचा कि यह महापुरुष तो अब तक यह शुभकार्य करते-करते थक तथा ऊब गए होंगे या यह भी हो सकता है कि भूमिका लिखवाने वाले साहित्यकारों के बिगड़े मूड को देखते हुए इन्होंने ऐसी सेवा से तोबा कर ली हो। इसलिए इस समस्या पर अच्छी तरह विचार करते हुए हमारी तो यह राय बनी कि हमें कोई और अक्ल का अंधा पंजाबी-प्यारा ढूंढना चाहिए, जो कि भूमिका लिखकर पुस्तक को इतना चमका दे कि पाठक उसको अंधेरी रात में भी बिना लाइट के पढ़कर आनंद ले सकें।

इस विषय पर घोड़ों की रेस की तरह अक्ल दौडाई। जब आंखों के सामने तारे नाचने लगे, तो तत्काल पंजाबी के प्रसिद्ध आलोचक श्री दुर्जन सिंह का चेहरा-मोहरा दैत्य के रूप में सामने आ खड़ा हुआ। इस प्रिय शक्ल के पहले कभी दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। मोह-सा जाग उठा। नजर भरकर जरा और ध्यान दिया। इस चेहरे पर कुछ अवगुण-रूपी धब्बे दिखाई दिए, लेकिन मैंने इनकी ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मामला कुछ अपने स्वार्थ का था। कहा जाता है, मतलब के समय तो किसी ने गधे को भी बाप बना लिया था।

अपनी पुस्तक की पाडुलिपि उठाई और पता पूछता हुआ श्री दुर्जन सिंह की कोठी के बाहर लगी घंटी का बटन जाकर दबा दिया। एक मिनट, दो मिनट और फिर दस-बारह मिनट बीत गए। कोठी के अंदर

कोई हलचल नही हुई। हां, एक कुत्ते के भौंकने की तेज और दिल कंपा देने वाली आवाज अवश्य आ रही थी। मैं सोच मे पड गया कि यदि यह कुत्ता अपनी जंजीर खुलवाकर या तुड़वाकर दीवार फादकर आया, तो मेरा क्या बनेगा ?

मैं निराश होकर लौटने ही वाला था कि एक लंबे, लेकिन भद्दी शक्ल-सूरत वाले सरदार जी ने दरवाजा खोला। चेहरे से वह कुछ क्षुब्ध लग रहे थे, जैसे अभी-अभी किसी से लड़-झगड़कर आए हों (शायद घर-वाली के साथ ही महाभारत हुआ हो)। मैं यह अनुमान लगाकर कि यही सरदार दुर्जन सिंह जी होंगे, अभिवादन किया। उन्होंने मेरे अभिवादन का जवाब देते हुए सवाल कर दिया, "सुनाइए, क्या काम है? क्यों कष्ट किया इस समय ?"

मेरे विचार के अनुसार यदि वह कह देते, "क्यो कष्ट दिया इस समय," तो कुछ अधिक उपयुक्त होता, लेकिन वह मानसिक रूप मे उखड़े हुए थे, इसलिए सवाल भी कुछ अटपटा-सा कर दिया। मैंने उत्तर देते हुए कहा, "जी, मुझे 'बड़बोला' कहते हैं। आपके पास अपनी पुस्तक की भूमिका लिखवाने के लिए हाजिर हुआ हूं।"

"बड़बोला ?"—उन्होंने विस्मय प्रकट करते हुए मुझे बरामदे मे पड़ी कुरसी पर बैठने का इशारा किया। स्वयं वह कुछ दुविधावस्था में दूसरी कुरसी पर विराजमान हो गए।

'जी हां !"—मैंने पूरी विनम्रता से कहा।

"पंजाबी साहित्य मे यह नाम मुझे तो कही पढने-सुनने को नही मिला ?"—उन्होंने शुष्क स्वर मे कहा।

"जी, मैंने नया-नया लिखना शुरू किया है !"—यह कहते हुए मुझे यो अनुभव हुआ, जैसे मैं कोई इंटरव्यू दे रहा होऊं और मुझ पर हो रहे सवालो का जवाब देना मेरे बस मे बाहर हो।

"दोस्त, कुछ-न-कुछ तो लेखक के साहित्यिक पक्ष मे चर्चा होनी चाहिए। चर्चा तभी होती है अगर वह लिखता हो, और लिखे भी उच्च-कोटि का !"

"जी, मेरे लेख भी कुछ मासिक पत्रिकाओ मे छपे हैं। पाठकों ने

उनको पसंद भी किया है।"

"मेहरबान, यों लिखने-लिखाने की क्या बात है ? हर ऐरा-गैरा पंजाबी लेखक बना फिरता है। विचार वाली बात तो यह है कि ऐसी रचनाएं पंजाबी पाठकों को क्या देती हैं ? उनका पथ-प्रदर्शन क्या करती हैं ?"

"श्रीमान् जी, मेरा तो यह पहला ही प्रयत्न है।"

"प्रयत्न की बात अच्छी कही है। देखो, शायद पता न हो। मैंने 'आलोचना-साहित्य' की पूरी पंद्रह पुस्तकें लिखी है, तभी कहीं मेरा नाम बना है। क्या तुममें इतना दम है, इतनी शक्ति है ?"

"मनुष्य का काम तो, जी, लगन से मेहनत करना है···"

"मेरे भाई, मेहनत वाली क्या बात हुई !"—सरदार दुर्जन सिंह जी ने मेरी बात काटते हुए कहा। "कल एक कहानीकार मेरे पास आया। उसने अपने कहानी-संग्रह की पांडुलिपि मुझे थमाते हुए कहा, 'इस पुस्तक के बारे में अपने विचार लिखने हैं आपको ?' उसकी यह बात सुनकर मुझे बहुत गुस्सा आया। यह भलामानस यही समझता होगा कि मुझे पुस्तकों के बारे में लिखने-लिखाने के सिवा और कोई काम ही नहीं ? सोचने वाली बात है, मैं भी बाल-बच्चे वाला हूं। मुझ पर भी घर-गृहस्थी का बोझ है। खैर, मैंने अपना गुस्सा उसके सामने प्रकट नहीं किया और पांडुलिपि पर सरसरी नजर डालने लगा। मुझे लगा कि यह आदमी तो पंजाबी भाषा के ज्ञान से बिलकुल खाली है। उसे तो मात्राओं का अंतर भी नहीं मालूम था। शब्द-विन्यास इतने गलत थे कि कुछ मत पूछिए। मैंने अपनी तसल्ली के लिए पूछ ही लिया, 'क्यों भई तुम्हारी शिक्षा क्या है ?'

" 'जी, मैंने ज्ञानी (पंजाबी भाषा की प्रभाकर परीक्षा) पास की हुई है !'—उसने इस प्रकार गर्व से बताया, जैसे पी-एच० डी० की हो। अतः बड़बोला भाई, पंजाबी लेखक तुम्हें अधिकतर ज्ञानी पास ही मिलेंगे; क्योंकि ज्ञानी पास करके हर एक स्वयं को महान लेखक समझने लग जाता है और उनका लिखा हुआ साहित्य पाठकों पर कितना स्वस्थ प्रभाव डालता है, यह बात किसी से छुपी हुई नहीं है।"

मैंने सोचा, कहीं सरदार दुर्जन सिंह जी 'बेटी के बहाने बहू को

सिखा' वाला हथियार मुझ पर तो नहीं चला रहे, लेकिन अब किया भी क्या जा सकता था ! वह कौन-से मुझे बुलाने गए थे ! मैं तो स्वयं ही चलकर उनके पास आया था। फिर भी मैंने बुद्धि से काम लेते हुए बात खत्म करने को ही बेहतर समझा।

"अच्छा जी, मेरे लिए क्या हुक्म है ?"

"तुम यों करो, अपनी पुस्तक की पांडुलिपि मुझे दे जाओ। पढ़कर मैं इसकी भूमिका लिख दूंगा।"

"फिर किस दिन आपके दर्शन करूं ?"—अपनी पुस्तक की पांडुलिपि उन्हें सौंपते हुए मैंने पूछा।

"एक सप्ताह बाद इसी दिन—यानी अगले रविवार को ही।" उन्होंने जवाब दिया।

मैं सरदार दुर्जन सिंह जी को अभिवादन करके वापस अपने घर आ गया। यकीन करना, यह एक सप्ताह मैंने बडी मुश्किल से बिताया। मेरे लिए तो एक-एक दिन सप्ताह ही बन गया था। हर रात मुझे आलोचक साहब की लिखी भूमिका के मधुर-मधुर सपने आते रहे। इन सपनों में मुझे सरदार दुर्जन सिंह जी की लेखनी ने उच्चकोटि का हास्य-व्यंग्य-लेखक बना दिया था और मैं उल्लास से भावविभोर होकर यह भूमिका अपने प्रत्येक लेखक-मित्र को पढ़वा रहा था। वे मुझे प्यार-भरी बधाइयां पेश कर रहे थे।

अंत में इकरार का दिन आया। मैं खुशी-खुशी सरदार दुर्जन सिंह की कोठी पहुंचा, और घंटी का बटन दबाया। इस बार दुर्जन सिंह के बजाय उनके नौकर ने दरवाजा खोला। मुझे देखते ही एक बार फिर वह अंदर चला गया और मेरी पुस्तक की पांडुलिपि उठा लाया। वह मुझे पांडुलिपि वापस करते हुए बोला, "यह कागजों का पुलिंदा साहब आपको देने के लिए कह गए थे।" फिर तत्काल उसने दरवाजा बंद कर लिया। जैसे उसके लिए मैं चोर-उचक्का होऊं, और बुरी नीयत से आया होऊं।

घर आकर जब मैंने अपनी पुस्तक की पांडुलिपि को देखा-भाला, तो वह उसी रूप में थी, जिस रूप मे सरदार दुर्जन सिंह जी को सौंपकर आया था।

मेरी पंजाबी फिल्म

जगदीश सिंह

☐

जब हिंदी फिल्मों के प्रोड्यूसरों ने अपनी फिल्मों के लिए मुझे 'साइन' करना बंद कर दिया तो 'पंजाबी प्यार' ने जोर मारा और मैंने एक पंजाबी फिल्म बनाने का निश्चय कर लिया। आखिर लगता क्या है एक पंजाबी फिल्म बनाने में? पांच-दस गुड्डे-गुड़ियां इकट्ठे कर लो। चार खेत और पांच-सात पक्के मकान खड़े कर लो—बस, पंजाबी फिल्म बन गई। अगर थोड़ी-बहुत कमी रह जाए तो एकाध भंगड़ा करा दो, जो आजकल गांवों में कहीं दिखाई नहीं देता। लंगड़े, लूले, भैंगे, मीरासी तो पंजाबी फिल्मों की शान हैं।

मेरे द्वारा पंजाबी फिल्म डाइरेक्ट करने की घोषणा के कारण चारों ओर खलबली मच गई। फिल्मी हस्तियां कहने लगीं, "चलो, एक और बढ़िया डाइरेक्टर 'फुट पाथ' पर आ गया।"

"इतना ही नहीं, जनाब! खुद तो डूबेगा ही, अपने साथ दर्जनों फिल्मी हस्तियों को भी ले डूबेगा।"

"जनाब, पंजाबी होना और पंजाबी की वकालत करना तो बुरा नहीं, पर पंजाबी फिल्म शुरू करके अपना और कई अन्य आदमियों का 'कैरियर' तबाह करना मूर्खता से कम नहीं। पंजाबी फिल्म बनाना, पंजाबी फिल्म को फाइनेंस करना, पंजाबी फिल्म को डिस्ट्रीब्यूट करना और पंजाबी फिल्म देखना तो केवल पिछड़े हुए और घटिया लोगों का ही काम है। कोई बुद्धिमान आदमी ऐसी बेवकूफी नहीं करता।"

कानाफूसी होती रही, किंतु मैं अपने निश्चय पर अटल था। अस्तु, फिल्म शुरू कर दी।

सबसे पहला काम था फिल्म का नाम रखने का। 'फिल्म पत्री' देखी तो उसमें यही लिखा था—"अंग्रेजी फिल्मों के रोमांस मे मरदाना झटका है, जिसे झेलना हर एक के बस की बात नहीं। बंगाल और मद्रास के रोमांस मे जनानापन है, जो जवान दिलों को पसंद नहीं और आम हिंदी फिल्मों का रोमांस मर्द और औरत के बीच 'उनका' नाचना-गाना है। इन फिल्मों को बनाना भी आसान है और इन्हें देखा भी प्यार से जाता है। इधर पंजाबी फिल्में अभी बचपन के झुनझुने और गुड़ियां भी नहीं छोड़ सकीं।"

सो, पंजाबी फिल्मों के बारे मे 'फिल्मी-पत्री' की हिदायत के अनुसार *मैं अपनी पंजाबी फिल्म का नाम भी 'गुड़िया-पटोले' खेलने वालों की पसंद* वाला ही रखना चाहता था। अस्तु, पंजाबी फिल्म के लिए साहित्यिक, संगीतात्मक या कलात्मक नाम की तो आवश्यकता ही नहीं पड़ी। जो नाम कानों को भला लगे, जिस नाम का कोई सूझबूझवाला अर्थ हो, या जो नाम समझदार बच्चों को पसंद आ जाए, वह पंजाबी फिल्म के लिए उपयुक्त कैसे हो सकता है? पंजाबी फिल्म के लिए तो नाम ऐसा होना चाहिए जिसमे पंजाब का उजड्ड कल्चर नजर आता हो या पंजाबी लोकगीतों में से। खैर, बड़े नाम सामने आये, पर कोई कलात्मक होता, और किसी मे रोब-दाब की कमी होती। कोई अच्छा नाम न मिला। आखिर बचपन का सहारा लिया—'गुड़िया-पटोले' वाली फिल्म जो बनानी थी।

हमारे गांव में नर्तकी की एक टोली आई थी। चौथी कक्षा मे पढ़ता था। मैं रोज रात को घरवालों से चोरी-छुपे नर्तकों का तमाशा देखने के लिए भाग जाता था।

'राम जी' नर्तक रात को लड़की 'झंडो' बनकर बड़े बढ़िया स्वांग भरा करता था—रोमांस और विवाह से बाल-बच्चे तक के बीच की सारी मंजिलें। वह 'झंडो' बड़ी अदा से पंजाबी के दोहरे अर्थों द्वारा लोगों को हंसाती थी। राण भैणी वाला तो झंडो पर इतना मर मिटा कि कभी-कभी जोश मे आकर उसे नोटों के हार पहना देता। मुझे एक-दो बार चोरी-छुपे 'नर्तकों' को देखने के अपराध मे मार भी पड़ी थी।

घरवालों का ख्याल था कि नर्तकों को देखना भले घरों के लोगों का काम नहीं। यही बात आज पंजाबी फिल्मों को देखने के लिए कही जाती है। खैर, अपनी फिल्म का नाम रखने में 'झंडे' ने मेरी बड़ी सहायता की। मैंने इस नाम का निश्चय कर लिया। नाम था—"झंडा पंजाब दी है!" यही ऐसा नाम था जिसे सुनते ही लोग अपने पढ़े-लिखे परिवारों को साथ लेकर मेरी फिल्म देखने के लिए 'लाइन' में लग जायेंगे।

नाम का अभियान समाप्त हुआ, तो मैं अपनी फिल्म के लिए 'कास्ट' ढूंढने को निकला। एक मित्र को मिला। वह मुझे देखकर खिल उठा। मेरी फिल्म में वह बिना पैसे लिए काम करने को तैयार था। वह तो मित्रता को निबाहने के लिए 'बिना कपड़े' भी काम करने को तैयार था, पर जब मैंने मित्र को अपनी 'पंजाबी फिल्म' में काम करने के लिए 'आफर' दी तो उसे 'करंट' लगा। बोला, "मेरी मित्रता का अपमान कर, तुझे मेरी मित्रता की सौगंध, अगर बाहर आकर बताए कि तुम मेरे पास पंजाबी 'फिल्म' में काम करने की 'आफर' लेकर आए थे!" सदा मेरी जेब से पीने वाले मेरे उस मित्र ने उस दिन मुझे मुंह बन्द रखने के लिए 'घूस' के रूप में अपनी जेब से पिलाई थी, क्या पता 'पंजाबी फिल्म' की 'आफर' की हवा फैल जाने से बेचारे के 'मार्केट' पर ही फर्क पड जाता!

आखिर मित्र से मार खाकर मैंने कुछ देर के लिए अपना प्लान ठप कर दिया। अप्रैल के बाद जब पंजाब के कालिज के लडके-लड़कियां परीक्षा देकर खाली हो गए, तो मैंने पांच-सात को गरमियों की छुट्टियों के लिए बुक कर लिया। यह मेरा वायदा था कि 'शूटिंग' जून के महीने तक समाप्त कर दी जाएगी, ताकि अगले सेशन में वे लडके-लडकियां दोबारा कालेज में दाखिल हो सकें। क्योंकि एक बार पंजाबी फिल्म में शक्ल दिखा देने के बाद किसी को उन्हें हिंदी फिल्म के तो निकट नहीं लगने देना था। इन लडके-लडकियों के अलावा मैंने कुछ पंजाबी फिल्मों के 'पेटेंट कलाकार' लिए और फिल्म आरंभ कर दी।

अब प्रश्न आया कि फिल्म में दिखाना क्या है?

फिल्म की 'थीम' के बारे में पुराना फार्मूला याद आया कि भारत में

फिल्म बनाते समय सदा ध्यान रखा जाए कि उसमें केवल वही दिखाया जाए जो कहीं नजर न आया हो। अगर किसी घटित बात को दिखाना हो तो यह दिखाया जाए, जो कभी था पर आज उसका नाम-निशान भी बाकी नहीं मिलता। इस आधार पर मैं अपनी पंजाबी फिल्म में पंजाब के जीवन के किसी भी पक्ष को नहीं ले सकता था। इसलिए न तो मैंने आज के पंजाब के नागरिक जीवन के बारे में कोई बात की, न पढ़े-लिखे की जिंदगी को चित्रित किया और न ही आज का सही ग्रामीण जीवन मेरी पंजाबी फिल्म में स्थान प्राप्त कर सका।

मैं पंजाबी होते हुए भी 'बंबइया' हूं, पंजाब से सैकड़ों मील दूर बंबई महानगरी में मुझे पंजाब का जीवन बंबई के 'कैनवेस' पर चित्रित करना था। इसलिए पंजाब के पहाड़ों जैसे तगड़े बैलों के स्थान पर मैंने बंबई के कतूरों जैसे ढंगर 'साइन' कर लिए। पंजाब के किसानों की भीड़ दिखाने के लिए लंगोटों वाले जमा कर दिए। बड़ी-बड़ी बैलगाड़ियों के बजाय छकड़े लेकर मैंने पंजाब के जीवन पर फिल्म शुरू कर दी।

कहानी की जरूरत नहीं थी। अगर बिना कहानी हिंदी फिल्में 'जुबली' मना लेती है तो पंजाबी फिल्म के लिए कहानी की क्या जरूरत है! इसलिए हमने कैमरा जमा दिया और उसके आस-पास पंजाबी फिल्म के सेट तान दिए। बस जो कलाकार खाली मिलता शूट कर लिया जाता। 'डायलाग' मैं साथ-साथ गढ़ता जा रहा था। एक दिन एक हिंदी अभिनेत्री मिल गई। वह मेरी फिल्म में एक-दो 'शाट' देने के लिए तैयार थी। पर मजबूरी यह थी कि बेचारी को पंजाबी बोलनी नहीं आती थी। सो, हमने उसे 'अंग्रेज' बना दिया और गांव के अनपढ़ के साथ उसका इश्क करा दिया।

मेरी फिल्म जोरों से बन रही थी। एक दिन सीन के लिए 'चाटी' (दही बिलोने का बड़ा-सा पंजाबी बरतन) और 'मथनी' की जरूरत पड़ गई। मैंने आदमी भेजा और वह 'चाटी' के बजाय मटकी ले आया और साथ ले आया बड़ी-सी मथनी। अब छोटी-सी मटकी और बड़ी मथनी से कोई बात न बन सकी। हमने मथनी के दो 'फूल' निकलवाकर हीरोइन

को दूध मथने पर लगा दिया। एक-दो पंजाबियों ने एतराज किया। पर मेरा तर्क था—"भाई, पंजाबी फिल्म के लिए मैं बीस-पच्चीस रुपये फालतू क्यो लगाऊं? लोगों को इन बातों की क्या समझ है! फिर पंजाबी फिल्में हैं भी तो छोटी मटकियों और बड़ी मथनियों का मिलाप!"

शूटिंग खत्म हो गई तो बारी आई कास्ट की नंबरिंग करने की। 'नंबरिंग' की गई। फिल्म के नाम में 'पंजाब' के शब्द-विन्यास गलत थे, जिनके बारे में मुझे फिल्म रिलीज होने के बाद पता लगा। क्योंकि मैंने पहली पुस्तक सामने रखकर सब लिखा था और किसी पंजाबी जानने वाले से लिखवाने पर पैसे खर्च होते थे, फिल्म पहुंची एडीटर की टेबुल पर, उसने बेतरतीब लिए गए 'शाटों' में से भी एक कहानी निकाल ली और फिल्म सेंसर के घर चक्कर लगाकर रिलीज के लिए पंजाब मे आ पहुंची और लगी घर-घर का दरवाजा खटखटाने, पर कोई उसे आंगन मे घुसने न दे, सभी पंजाबी थे पर हिन्दी फिल्मों वाले पंजाबी! आखिर एक साहब मान गए और फिल्म रिलीज कर दी। मैंने 'हाउस' को फुल करने के लिए 'फ्री पास' यों बांटे जैसे चुनाव के दिनों मे नेताओं के घर पर सदाव्रत लग जाते हैं। सभी सिनेमाओं में बालकनी और ड्रेस सर्कल फ्री पास और निम्न क्लासें आधी-आधी भरी थी। सोचा था, हाल भर जायेंगे तो खूब नाम होगा।

रात को छुपकर एक-एक सिनेमा में जाता, पर हर रोज 'फ्री पास' बालकनी बीड़ी पीने वाले लड़कों से भरी होती। वे आपस में बातें करते, 'भगवान भला करे पंजाबी फिल्म बनाने वाले का जिससे हमारा फिल्म देखने का शौक पूरा हो गया। नहीं तो साला साहब फ्री-पास तो घटिया से घटिया हिंदी फिल्म का भी नही छोड़ता! 'फ्री पास' में अगर कोई पढ़े-लिखे लोग थे तो वे मेरी ही फिल्म के कलाकार, जो छुट्टियां खत्म होने के कारण दोबारा कालेज मे दाखिल हो चुके थे। हिंदी फिल्मों मे तो उन्हे चांस मिलना नही था। फिर वे कालेज की रंगीनी भी छोड़ें तो क्यों?

फिल्म को शहर-शहर में रिलीज करने के बाद हिसाब ...
चला कि मेरा पंजाबी-प्यारा भाई, जिसने फिल्म रिलीज की

के कारण 'बापू' की कबाड़ी की दूकान पर टूटी पेटियों और पुरानी फिल्में बेचने के लिए बैठ चुका था, क्योंकि शिक्षित नागरिकों के लिए मैंने फिल्म बनाई ही नहीं थी और ग्रामीण फिल्म देखने आए नहीं थे !

साले, डरपोक

एम॰ के॰ राही फिरोजपुरी

□

अखबार पढ़ते हुए रामप्यारी की नजर अखबार की उस बड़ी-सी सुर्खी पर जाकर रुक गयी, "आज पंजाब बंद है।"

यह खबर उसको झंझोड़ गयी और उसने ठंडी लम्बी सांस लेते हुए मुंह सिकोड़ा।

"ए जी, मैंने कहा, क्या बनेगा ? मोह नाम की चीज दुनिया में से खत्म होती जा रही है। जब देखो, हर रोज सुबह जलसे-जलूस, धरने और हड़तालें, जैसे इनके पास इसके सिवा अन्य कोई काम ही न हो।"

"आप बहुत भोली हैं, रामप्यारी जी ! यह लोकराज्य है ! लोकराज्य ! अब जबकि हमारे देश के नागरिक राकेश शर्मा जी अंतरिक्ष तक पहुच गये हैं, तो हमने जलूसों से कर्फ्यू तक उन्नति कर ली है और वह भी आपकी आंखों में खटकती है।"

"हां, हां। खटकती है मेरी आंखों में आपकी उन्नति। कर्फ्यू हमारे लिए कैसा !" उन्होंने मूंगी की दाल में कड़छी मारते हुए कहा, "हम तो दिन-भर कोल्हू के बैल की तरह लगे हुए हैं। कर्फ्यू तो आप जैसे निठल्लों के लिए है।"

"अच्छा जी, अब हम निठल्ले हो गये ! चलो, ठीक है। आप रोटी तैयार कर दें। हमें दफ्तर जाना है।"

जब हम दफ्तर जा रहे थे, तो रास्ते में हंगामा मचा हुआ था। बाजार बंद हो रहे थे। पुलिस तेजी से इधर-उधर घूम रही थी। हड़ताली सज्जन तरह-तरह के नारे लगा रहे थे :

पंजाब ''' जिंदाबाद-मुरदाबाद ''' ।

हमारी एकता···जिंदाबाद-जिंदाबाद···।
हक लेंगे···साथ-साथ

मैंने जब पास खड़े एक महाशय से इन नये नारों के बारे में पूछा, "भई, यह क्या माजरा है ?" तो वह बड़ी मीठी और प्यारी भाषा में बोले, "राम अवतार जी, अंधे हो, दिखाई नहीं देता ?" अभी उसका यह वाक्य पूरा नहीं हुआ था कि पुलिस ने भीड़ को तितर-बितर करने के लिए अश्रु-गैस के गोले छोड़े और लाठीचार्ज की, तो वह योद्धे जूतियों को छोड़कर एक-दूसरे को रौंदते हुए अंधाधुंध भाग निकले। आगे-आगे लोग और पीछे-पीछे हमारी जनप्रिय पुलिस थी और हम भी एक तख्त के तले छुपकर बैठे हुए यह सब कुछ देखकर आनन्दित हो रहे थे। कुछ देर बाद बाजार श्मशान की तरह नजर आ रहा था।

अस्तु, हमने अपने साथी टिफन देवता को छाती से लगाया। पगली बीवी के पानी में उलटी तरफ बहने की तरह दफ्तर जाने के विचार को बीच में छोड़कर घर की ओर चल दिये।

वापसी पर कुछ पुलिस वालों ने हमें आ घेरा। पिटाई के कारण निकल रही मेरी चीखें सुनकर लोग छतों पर चढ़कर देखने लगे थे, लेकिन किसमें हिम्मत थी कि वह मुझे उनसे आकर छुड़ाए। भला पुलिस और कसाई में क्या अंतर है! कसाई जान से एक ही बार मार डालता है और पुलिस हलाल की तरह जिबह करके।

आखिर खूब पिटाई करने के बाद उन्होंने हमारे साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "क्यो अरे, क्या नाम है तेरा ?"

"जनाब! सेवक को राम अवतार कहते हैं, और एक मामूली-सा क्लर्क हूं।"

"पर तू अंधा है। तुझे पता नहीं, यह रास्ता हमने ब्लाक किया हुआ है ? तू कुत्ते की तरह पूछ उठाए इधर दौड़े आ रहा था।"

"जी, मैं तो··"

"चल, बकवास मत कर। मेरे बाप के साले, जा दफा हो जा!" उन्होंने बंदूक का बट मेरी पीठ पर मारते हुए कहा।

जब हमने घर आकर अपना चाद जैसा मुखड़ा शीशे मे देखा, तो मुह

पर भारत का नक्शा बना हुआ था। रामप्यारी गर्म-गर्म चाय का कप लाई और मेरे ताजा जख्मों पर नमक छिड़कती हुई कहने लगी, "बालम, अच्छा हुआ पुलिस वालों ने आपको शांति का सबक सिखा दिया। शुक्र करो, उन्होंने आपको लीडर समझकर सलाखों के पीछे नहीं ढकेल दिया।"

अभी उसका वाक्य पूरा नहीं हुआ कि तड़ातड़ गोली की आवाजें कानों में पड़ी, और सारे शहर में मातम जैसा फिर छा गया। ईश्वर जाने क्यों ?

रामप्यारी गोली की आवाज सुनते ही अंडरग्राउंड हो गयी। हमने ऊंट की तरह होंठ लटकाये सारा घर छान मारा, लेकिन उनका पता न चला। बच्चे भी सहमे हुए थे।

आखिर हमने रसोई में नजर दौड़ाई, तो देखकर दंग रह गये कि रामप्यारी हाथ में बेलन लिये रसोई की स्लैब तले बेहोश पड़ी थी। अगर पांच-सात मिनट और उसका पता न चलता, तो रामप्यारी सचमुच राम को प्यारी हो जाती और हम···

बलिहारी जायें पड़ोसियों के, उन्होंने मेरी हालत पर तरस खाते हुए न आगे देखा, न पीछे, और तत्काल डाक्टर को बुलाने चल दिये।

हमने रामप्यारी को पलंग पर लिटाया और उसके मुंह में पानी डालते हुए उसकी हथेलियां मलने लगे। जब उसने आंख झपकी तो हमने सुख की सांस ली। उस समय डाक्टर साहब भी आ धमके।

उन्होंने नब्ज देखी। हमें हौसला दिया और सिरिंज गर्म करने के लिए इशारा किया। हमने स्टोव देवता को दियासलाई दिखाई, तो वह पंजाब रोडवेज की बस की तरह फक-फक करने लगा।

जब हमने एक नजर सिरिंज की ओर डाली, तो हमारे होश उड़ गये। इतनी मोटी सुई और सिरिंज पहली बार मैं देख रहा था।

मैंने हैरान होकर कहा, "डाक्टर साहब, आप आदमियों के डाक्टर हैं या जानवरों के···"

मेरी घबराहट देखकर सिरिंज की ओर नजर डालकर डाक्टर भी घबरा गया, "माफ करना। जल्दी में मैं गलती से दूसरा बैग ले आया हूं, पर दवाइयों का फार्मूला 'सेम' (वही) होता है। इंजेक्शन मनुष्य की

मात्रा के अनुसार लगाऊंगा। आप डरें नहीं।"

इतने में रामप्यारी होश में आ गयी। वह मोटी-ताजी सुई देखकर चीख उठी, "नहीं, नहीं, मैं टीका नहीं लगवाऊंगी।" टीके से उसे पहले ही नफरत थी, और अब तो रामप्यारी ने चीख-पुकार से आकाश सिर पर उठा लिया। उधर जानवरों की सिरिंज लिये डाक्टर भी घबरा गया था। हमने धर्मपत्नी को बिना टीका लगवाये ही बीस रुपये देकर डाक्टर को चलता किया। दरवाजे में से बाहर निकलते हुए डाक्टर बड़बड़ाये जा रहा था, "साले, डरपोक! अगर इंजक्शन नहीं लगवाना था, तो हमें बुलवाने *की क्या जरूरत थी?"*

सम्पादक की कुरसी पर

तख्त सिंह कोमल

□

चुनाव बोर्ड ने सर्वसम्मति से हमें 'ठन-ठन गोपाल' मासिक पत्रिका का संपादक चुन लिया। घरवालों ने गली-पड़ोस में लड्डू बांटे और जी भर-कर बधाइयां ली। उस दिन हमने अन्य कोई काम नहीं किया, केवल घूम-फिरकर रद्दी वालों से पुरानी किताबें, अखबार, पत्रिकाएं आदि खरीदते रहे, क्योंकि किसी सम्पादक के लिए सबसे पहली और जरूरी चीज यह पुरानी पत्रिकाएं और अखबार आदि ही हैं। बाहर से मैटर न आने की अवस्था में इनका ईश्वर जैसा सहारा होता है।

अगले दिन दफ्तर में हम सम्पादक की कुरसी पर जाकर सुशोभित हो गये। अपने बैठने के लिए कमरा ऐसा चुना, जिसमें पहुंचने के लिए पहले तीन-चार कमरों में से गुजरकर आना पड़े। इन कमरों की दीवारों पर हरिणों के सींग, शेरों के भूसे से भरे सिर, चीतों की खालें, और जंगली भैंसों के सिर आदि टांग दिये, ताकि देखने वाले पर हमारे सम्पादक पद का पूरा-पूरा रौब बैठ जाये। इन कमरों में रद्दी में खरीदे अखबार, पत्रिकाएं और किताबें रखवा दीं। कुछ किताबें अलमारियों समेत एक गरीब-असहाय लेखक से केवल एक सौ रुपये में ही मिल गयी थीं। एक नुक्कड़ में उनको भी सुसज्जित कर दिया। बात क्या, खूब ठाठ बंध गया। तीसरा कमरा जगत्-प्रसिद्ध कवियों और लेखकों की तसवीरों और ऐति-हासिक चीजों से भर दिया, ताकि किसी वस्तु की कमी न रह जाये। अपने कमरे में केवल फूलदान, कलमदान, पानदान, उगालदान, मेज, कुरसी, कैलेंडर, रद्दी की टोकरी, कुछ इलाइचियां और मिश्री आदि ही रखीं, ताकि साथ ही साथ आवाज सुरीली और मुख मीठा भी होता

रहे। आंखों पर काले चोंचे (ऐनक) लगा लिये, ताकि अगर किसी दोस्त से आंख से आंख मिलाकर बात करनी पड़ जाये, तो हम झेंप में आकर सम्पादक के पेशे को बदनाम न कर बैठें। बाहर कालबेल लगवाकर मंगलू चपरासी को चेतावनी दे दी कि जब कोई मुलाकाती या मुलाकातिन आये, बिना घंटी बजाये उसे बिलकुल अंदर न लाये। यह पेशकदमी केवल हमें अग्रिम सावधान करने के लिए था।

घंटी बजते ही हम हड़बड़ाकर कुरसी से उठ जाते, शीशे में पगड़ी और अपनी खिजाब लगी दाढ़ी का जायजा लेते और फिर मूछों को और कुंडलदार बनाकर पलक झपकते में कुरसी पर डट जाते और यूंही कुछ लिखने लग जाते। माथे पर त्योरी डाल लेते और शरीर को मास के आटे की तरह अकड़ा लेते। आप जरूर हैरान होंगे कि मैं इतना काम इतनी जल्दी कैसे निपटा लेता था। बस, यही हैरानी मुझे भी है। न जाने मुझमें इतनी शिव जी जैसी शक्ति कहां से आ जाती थी? फिर जब मंगलू मुलाकाती को अंदर लाता, तो हम पूरे पांच मिनट तक उसकी ओर देखते नहीं थे···बस, यूंही व्यस्त-से बैठे रहते। लिखते समय, वक्त का अंदाजा हम कलाई घड़ी को बार-बार देखकर लगा लेते थे। जब पूरे पांच मिनट हो जाते, तो हम चौंककर आंखें ऊपर उठाते और फिर मंगलू को सम्बोधित करके पूछते "अरे मंगलू, इन्होंने कैसे दर्शन दिये ?"

"जी, यह आप ही निवेदन करेंगे।" मंगलू उत्तर देता।

नौकर को मैंने यह बात तोते की तरह रटा रखी थी।

मुलाकातियों में अधिकतर नौकरी की तलाश में मारे-मारे फिर रहे ग्रेजुएट और एम० ए० पास नौजवान ही होते थे। या कभी-कभार किसी टाइपिस्ट लड़की के भी दर्शन हो जाते थे, पर टाइपिस्ट लड़कियों को मैं खुद नौकरी पर नहीं रख सकता था।

एक दिन मैं अपनी श्रीमती जी से इस बारे में बात कर बैठा। उन्होंने बिना सोचे झट कह दिया, "लड़कियों से इंटरव्यू मैं खुद लूंगी। आप अपनी कृपा दृष्टि जरा दूर ही रखें।"

अगले दिन हमने दफ्तर के सामने चाक से लिखकर बोर्ड लगा दिया, "उम्मीदवार 'लेडी टाइपिस्ट' मेरी प्राइवेट सेक्रेटरी से बातचीत करें।"

मुझे हैरानी इस बात की हुई कि हमारी श्रीमती जी ने दो महीने अपने कठोर इण्टरव्यू से किसी को पास नहीं होने दिया। रात को मैं हर रोज पूछता, "*मुनाम्रो जी, कोई मिली? कारस्पांडेंस के लिए बड़ी ही* तकलीफ होती है।"

वह उत्तर देती, "आती तो बहुत हैं, पर मुझे कोई पसन्द नहीं आती। कोई जलेबी-जूड़ा करके आती है। कोई लटें लटकाती हुई चली आती है। किसी के बाल पफ किये हुए होते और कोई पोनी टेल लटकाती हुई आती है···मुझे इनके लच्छन (लक्षण) अच्छे नहीं दिखाई देते। आज सुबह एक आयी। मेरे साथ बातें करते-करते दो बार अपने लेडी बैग में लगा हुआ शीशा देखा, और फिर होंठों पर लिपस्टिक भी लगायी। ऐसी रांडों को कैसे रख लूं? अब इस उम्र में मुझे तो कहीं और कोई ठिकाना नहीं मिलेगा।"

एक रविवार को मैं घर पर ही था। एक सुबुक-सी युवा लड़की नौकरी के लिए आयी। हमारी श्रीमती इण्टरव्यू लेने लगी, "टाइपिस्ट की नौकरी के लिए आयी हैं?"

"जी!"

"क्वालीफिकेशन?"

"बी० ए०, प्रभाकर!"

"पहले कहीं काम किया है?"

"जी, एक दफ्तर में थी।"

"नौकरी छोड़ने का कारण?···कम तनख्वाह? काम ज्यादा?··· या कुछ और खरमस्ती?"

"जी, इनमें से कोई भी नहीं।"

"फिर?"

"जी, असल में बात यह हुई कि उस दफ्तर के बड़े बाबू जी खुद कवि होने के कारण साहित्यिक रुचियों वाले थे। एक दिन टी-ब्रेक के बीच, मेरे साथ प्यार के सम्बन्ध में चर्चा छेड़ बैठे। बाबू जी का दफ्तर घर में ही होने के कारण उनकी पत्नी ने कहीं हमारी बातचीत सुन ली। वह भूखी शेरनी की तरह अन्दर आ गई और मुझे बांह पकड़कर बाहर निकाल

दिया । बाबू जी के साथ बाद मे क्या बीती यह ईश्वर जाने ।"

"हूं । इश्क-सम्बन्धी बातचीत ?"'शुरुआत अच्छी की है । अच्छा, अपने नाम का कार्ड मुझे दे जाओ । मैं तुझे साहब के साथ बात करके इत्तफाक कर दूंगी ।"

मुझे अन्दर लेटे हुए ही पता चल गया कि लेडी टाइपिस्ट हमारे भाग्य मे नही । किसी बूढी के साथ ही माथा-पच्ची करनी पड़ेगी ।

जरा बच के हमदर्द सलाहकारों से

कुलदीप सिंह चेतनपुरी

□

सलाह देने वालों को सलाहकारों के खिताब से निवाजा जाता है पर हमारा भाव यहा उन सलाहकारों से बिल्कुल नही है, जो किसी राज्य मे गवर्नरी राज्य हो जाने के कारण, उस राज्य के गवर्नर के साथ नियुक्त किये जाते है। इन सलाहकारों और जिन सलाहकारो की हम बात करते हैं, दोनो मे जमीन-आसमान का अन्तर है। यह सलाहकार तनख्वाह पर काम करते है, पर हमारे वाले सलाहकार बिना किसी फीस के मुफ्त ही सलाह देते रहते है।

यह सलाहकार हमे हमारे गांवो और शहरों मे आम मिल जाते हैं। इन सलाहकारों को ढूंढना नही पड़ता, बल्कि यह हर समय हमारे साथ ही रहते हैं। सलाहकार सलाह पूछने पर सलाह नही देते, बल्कि जब भी इनको सलाह देने का मौका मिलता है, यह अपने तर्कस मे से सलाह के तीर छोड़ते जाते है। यह अलग बात है कि किसी को इनकी सलाह रास आती है या नही'''लेकिन अपने अनुभव के अनुसार तो इनकी सलाह दीवाला निकालने में कोई भी कसर बाकी नहीं छोडती। हमारे कहने का मतलब यह है कि इनकी सलाह पर कार्य करने वाले ऐसे गधा-चक्कर में फंस जाते है कि इस चक्कर मे से निकलने के लिए कई गधो को डैडी कहना पडता है।

एक बार एक बाबू जी की हमारे कस्बे के डाकघर में बदली हो गई। बाबू जी ने हमारे पड़ोस में मकान किराये पर ले लिया और उसमे परिवार सहित रहने लगे। मकान के बाहर काफी जगह खाली थी। नलका भी लगा हुआ था। बाबू जी ने नलके के आस-पास छोटी-छोटी क्यारिया बनाकर सब्जी बो दी। आजकल की बेहद महंगाई में आदमी को जहा भी

कुछ मिलने की आशा होती है, वह ढूढने का प्रयत्न करता है। बाबू जी ने मन मे सोचा, "चलो, दो-चार महीने सब्जी ही घर में आ जाया करेगी।"

गर्मियों के दिन होने के कारण बाबू जी को हर रोज शाम को नलका हाथ से चलाकर क्यारियों में पानी देना पड़ता था। एक दिन शाम के समय बाबू जी नलका हाथ से चला रहे थे कि उनका एक जान-पहचान का सलाहकार आ गया। बाबू जी को नलका हाथ मे चलाते हुए देखकर कहने लगा, "वाह! वाह! बाबू जी, क्यों नलका इस प्रकार चला-चलाकर परेशान हो रहे है, यहां कोई छोटी-मोटी मोटर लगवा लें⋯ "

"आपकी बात तो ठीक है, पर आजकल तनख्वाह मे मुश्किल से दो वक्त का गुजारा होता है⋯हजार रुपया हम कहां से लाएं? और अगर मोटर ले भी आएं तो बिजली का बिल भी तो बढ जायेगा⋯इस तरह थोडा-सा समय लगाकर काम चला लेते हैं⋯फिर हमारा क्या पता, कल को बदली हो जाये?" बाबू जी ने अपनी मजबूरी प्रकट करते हुए जवाब दिया।

"आपकी एक तनख्वाह के साथ मोटर आ जायेगी एक महीना किसी तरह गुजारा कर लें। और यह बिजली के बिल से डरने की क्या जरूरत है⋯घर-घर लोग तारें सीधे खम्भे से लगाये हुए हैं ⋯यहां लोकराज्य मे कौन पूछता है⋯और अगर कभी बदली की बात हुई, तो मोटर बिक भी सकती है। यह कौन-सी गाय-भैंस है, जो बहुत समय इस्तेमाल करने मे बूढ़ी हो जायेगी⋯इसका उतना ही मूल्य फिर मिल जायेगा!" सलाहकार ने अपनी दलील को वजनदार बनाते हुए कह दिया।

इन बातों से बाबू जी पर सलाहकार का अच्छा प्रभाव पड गया। बाबू जी को यह हमदर्दी-भरी सलाह जंच गई। वह अगले सप्ताह ही मोटर खरीद लाये। जरूरत के समय बाबू जी बिजली का तार डाइरेक्ट फिट करके अपना काम चला लेते। इस प्रकार बाबू जी की महीना, दो महीने खूब मौज बनी रही और वह मन-ही-मन मे हमदर्द सलाहकार को दाद देते रहे, लेकिन 'सौ दिन चोर के, एक दिन साध का' वाली कहावत के अनुसार एक दिन बिजली बोर्ड के कर्मचारियों ने बाबू जी की यह चोरी पकड़ ली।

यह देखते ही बाबू जी के हाथों के तोते उड़ गये। उन कर्मचारियों ने मिनटों में ही कमरे का सारा कनेक्शन काट दिया और वह मोटर तारों समेत ले गये। बिजली बोर्ड वालों ने उन पर दो हजार जुर्माना किया। बाबू जी ऐसे शिकंजे में फंस गये कि मकान-मालिक ने भी उनको मकान से अलविदा कर दिया, क्योंकि नया मीटर लगवाने के लिए मकान-मालिक को दो बार सिक्यूरिटी फीस चुकानी पड़ी थी, और कई बार दफ्तर होने के बाद मीटर लगना था। भाग-दौड़ करके बाबू जी ने दो हजार रुपये जुर्माना चुकाया और मोटर छुड़वा ली। कस्बे में और कहीं किराये पर मकान न मिलता देखकर बाबू जी को बदली करानी पड़ी। इस प्रकार वह अपने मन में सलाहकार को कोसते हुए सजल आंखों से वहां से प्रस्थान कर गये।

इन सलाहकारों का सलाह देने का अपना निराला ढंग होता है। यह ऐसे मीठे शब्दों का उपयोग करते हैं कि दूसरे पर बरबस प्रभाव पड़ जाता है। एक बार हम शहर गये। घर का सौदा-सुलफ और अन्य सामान खरीदने के बाद हमारे पास किराये के लिए पैसे भी न बचे। हम जब बस-अड्डे पर आये, तो हमें एक परिचित सज्जन मिल गया। हमने उसे अपनी मुश्किल बताई और किराये के लिए पैसे उधार मांगे, पर उसने हमें ऐसे हमदर्दी-भरे शब्दों में कहा कि हम पर अपने-आप ही प्रभाव पड़ गया, "देखो सरदार जी ! मुझसे उधार लिए पैसे आपको वापस करने पड़ेंगे, पर अगर आप आज बिना टिकट ही चले जाएं, तो क्या हर्ज है'''आपके पैसे बच जायेंगे।'''यहां कौन-सा कोई पूछता है ''अगर कोई चेकर सवार हो जाये, तो वह कौन-सा बस चेक करता है'''कंडक्टर से दस रुपये लेकर ठेके मे जा घुसता है'''मैं हर रोज ही बिना टिकट के जाता हू।"

हमने उसकी सलाह मान ली और बिना टिकट के ही सफर करने के लिए जाकर बस की सीट पर विराजमान हो गये। बस चलने को अभी दस मिनट ही बीते थे कि चेकर साहब बस में आ धमके। चेकर को देखते ही हमारे होश-हवास उड़ गये। हमने बहुतेरे बहाने बनाये कि हमारा टिकट खो गया है, पर सच तो सौ परदे फाड़कर भी बाहर आ जाता है। उन्होंने टिकट के नम्बरों का हिसाब लगा लिया और हमें किसी से मांगकर जुर्माना चुकाना पड़ा और शर्मिन्दा अलग होना पड़ा।

इसी प्रकार एक बार हमें गांव मे एक बरात के साथ जाने का अवसर मिला। ड्यूटी पर रहने के कारण हमारे नये सिलाये कपड़े मैले हो गये। पर हमने मैले कपड़े पहनकर जाने का निश्चय कर लिया था कि हमारे पड़ोस से एक स्त्री आयी, जो मेरी दादी के समान थी। कहने लगी, "अरे चद सिंह! यह कपडे पहनकर तू बरात के साथ जाता हुआ अच्छा लगेगा।···लोग मजाक करेंगे·· अगर मेरी माने, तो इनको धो डाल···सुबह बरात पर जाने से पहले यह सूख जायेंगे।"

बूढ़ी पडोसिन की सलाह मानकर हमने कपड़े धो दिये, पर अगले दिन बारह बजे से पहले कपड़ो ने सूखने का नाम न लिया, और हम हमदर्द पडोसिन की सलाह मानकर बारात के साथ जाने से ही रह गये।

इसी प्रकार कई सलाहकार किसी को बीमार देखकर अपने इलाज बताने लगते है, जिसका प्रभाव उल्टा ही पड़ता है। पर बाद में कुछ नही किया जा सकता, क्योंकि सलाहकार तो अपना तीर ठिकाने पर मारकर इधर-उधर हो गया होता है। इस प्रकार कई अन्य छोटी-बड़ी घटनाएं मेरे अनुभव मे आयी है। इसलिए आप सबको कहता हूं कि जरा बचकर रहना इन हमदर्द सलाहकारो से, क्योंकि इनका डसा हुआ कभी भी ठीक नही होता।

वफादारी

बलवीर सिंह रैना

☐

बात वास्तव में यों हुई कि जैसे ही मेरी पत्नी ने गहरे घुप अंधेरे कमरे के बल्ब का स्विच आन किया, उसके गोरे-चिट्टे चमकते हुए चेहरे पर गुलाब की तरह खिली हुई खुशी के बल्ब का स्विच ऑफ हो गया। सही अर्थों में मैं इसे फ्यूज उड़ना कह सकता हूं। मैं कमरे में पहले से ही मौजूद था, और वह अपने प्रेमी के साथ मेरे सामने खड़ी थी।

विजली के प्रकाश में जैसे ही मेरा चेहरा उनको प्रत्यक्ष नजर आया, उसके प्रेमी ने उसकी कमर के गिर्द लपेटी अपनी बांह झटककर खींच ली, जैसे बिजली का करंट लग गया हो।

फिजिक्स का प्रोफेसर होने के कारण मैं प्रायः क्लास में लेक्चर देता रहता था कि बिजली के पोजिटिव और नेगेटिव चार्ज एक-दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं, जैसे चुम्बक के विरोधी सिरे एक-दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं और अपनी बात को रोचक बनाने के लिए मैं साथ ही औरत-मर्द को भी चुम्बक के दो विरोधी सिरों की तरह उदाहरण के रूप में घसीट लेता था, और यह उदाहरण कालेज के नवयुवकों के लिए बड़ा स्पष्ट और दिलचस्प होता था।

लेकिन आज मैंने अपनी आंखों के सामने ही एक अजीब कौतुक देखा था, जैसे कि मेरी पत्नी के प्रेमी का मेरी पत्नी से झटककर दूर हो जाना! मुझे दुख हुआ कि वर्षों से मैं जो उदाहरण अपने विद्यार्थियों को देता आ रहा था, आज वह गलत साबित हो गया था और एक सच्चा विज्ञान-प्राध्यापक होने के नाते मुझे अपनी पत्नी के प्रेमी पर बहुत गुस्सा आया, कि उसने मेरे ही सामने पूरी यूनिवर्सिटी में चर्चित मेरे इस उदाहरण की

धज्जिया उड़ाने की हिम्मत की थी। वास्तव मे गुस्सा आना अनिवार्य था, क्योंकि मेरी पत्नी का प्रेमी कोई और नही, मेरे पास पढने वाला मेरा ही एक विद्यार्थी था।

ऐसे होनहार पढ़ाकू और मेहनती विद्यार्थी से मुझे यह आशा नही थी कि वह प्रैक्टिकल परीक्षा के समय इतनी बडी गलती करेगा। मेरे ही सामने उसने मेरे पढ़ाये हुए पाठ पर पानी फेर दिया था! पानी क्या, मैं तो समझता हू, काली स्याही फेर दी थी सब किये-कराये पर! मैं उसको जितना तेज-तर्रार, होशियार और विकासशील समझता था, उतना वह साबित नही हुआ था। मैं उससे बड़ी-बड़ी आशाएं-उम्मीदें लगाये बैठा था। अपनी पत्नी के साथ उसको पहली बार मैंने ही मिलाया था।

मैंने ही उसे एक अच्छे दोस्त की तरह समझाया था कि एक क्वारी लड़की के बजाय एक विवाहिता स्त्री किसी क्वारे नौजवान के लिए ज्यादा अच्छी बात साबित हो सकती है, क्योंकि वह तजुर्बेकार होती है, और दोनों मे से एक प्राणी का अनुभवी होना दूसरे के ताजा अनुभवो मे चार चाद लगा देता है। मुझे कुछ हद तक खुशी भी हुई कि एक सहृदय और आज्ञाकारी विद्यार्थी होने का सबूत देते हुए वह मेरे दिए सुझाव पर कार्य कर रहा था। यद्यपि इस काम के लिए उसने मेरी पत्नी ही चुनी थी, तथापि अन्य किसी की पत्नी वह चुन भी कैसे सकता था? मैंने अपनी पत्नी के साथ अकेले मिलने के लिए उसे भरपूर अवसर दिए थे।

और तो सब ठीक था, परन्तु मुझे एक बात की समझ नही आ रही थी कि मेरी पत्नी मुझसे इतनी सहमी हुई क्यो थी? मैं तो उनको गुस्से से घूर नही रहा था। मेरा चेहरा तो बड़ा सहज-स्वाभाविक था, जैसे कुछ हुआ ही नही है जबकि वे दोनों मेरे सामने इस प्रकार खडे थे, जैसे कोई बहुत बड़ा गुनाह करते हुए रगे हाथों पकड़े गये हो। अजीब बात थी। डरना तो वास्तव मे मुझे चाहिए था, क्योंकि कल को मेरा विद्यार्थी सारी यूनिवर्सिटी में मेरी मर्दानगी का भांडा फोड कर सकता था, लेकिन फिर भी वह डर रहे थे, और मुझे कोई डर नही था। कहने की जरूरत नही कि मेरी पत्नी बडी वफादार थी।

यों तो अब तक आप मेरे बारे मे ठीक प्रकार से समझ गये होंगे। फिर

मैं जब नंगा ही हो गया हूं, तो बता दूं कि मेरी भीतरी बिजली का पोजिटिव चार्ज छोटी उम्र से ही बिजली के नेगेटिव चार्ज वाली वाडियों के सम्पर्क में लगातार रहने के कारण समाप्त हो चुका है। समझ गये हो न ? यों आपकी समझदारी पर मुझे पूरा भरोसा है।

आपको शायद मेरे साथ सहानुभूति न हो, लेकिन मेरी पत्नी के साथ अवश्य सहानुभूति हो गयी होगी। इसमे आपका कोई कुसूर नही। आपको सहानुभूति ही होनी चाहिए। किसी जमाने मे मुझे भी लोगों की बेचारी दुखी पत्नियों के साथ बडी सहानुभूति हुआ करती थी, और मैं उनकी वह खुशियां और इच्छाएं पूरी करने का भरसक प्रयत्न करता रहता था, जिससे वे प्राय. वंचित ही रह जाया करती थी।

···और आज आपको मेरी पत्नी के साथ सहानुभूति है। ईश्वर न करे, कल किसी को आपकी पत्नी से सहानुभूति हो जाये। खैर···

···हां, तो मैं बता रहा था कि मेरी पत्नी अपने प्रेमी समेत मुझसे बहुत सहमी हुई थी। वास्तव में मेरी पत्नी अपने चेहरे पर भय की मुद्राएं उभारकर मेरे विद्यार्थी के सामने मेरी मर्दानगी का दम भरना चाहती थी। जबकि मैं अपने चेहरे की स्वाभाविकता पर गुस्से का मुखौटा चढ़ाने में सफल नही हो पा रहा था। मैं अपनी पत्नी के इस उपकार तले दबा जा रहा था, और किसी भी प्रकार इसका बदला अभी उसे लौटाना चाहता था।

सहसा, मैं अपनी कुरसी से उठा। बल्ब का स्विच आफ किया और उन दोनों को अंधेरे कमरे में अकेला छोड़कर कमरे में से बाहर चला गया।

मेरे इस प्रकार चले आने पर बुरा नहीं मानना ! मैं एक वफादार पत्नी का वफादार पति हूं।

सींगों वाला गधा

डा० मोनोजीत

□

बात बडी अजीब-सी हो गयी थी। रामू कुम्हार की गधी को प्रसूत हो गया था। गधियों को प्रसूत होता ही रहता है, पर इस गधी ने जिस बच्चे को जन्म दिया था, उसने पूरी गधा जाति के नाम को चार चांद लगा दिये थे—उस बच्चे के सिर पर सीग थे।

जब गधों को इस बात का पता चला, उनमे खुशी की लहर दौड़ गयी, क्योंकि इस गधे के बच्चे के सिर पर सीग थे, और बाकी गधे सीग न होने के कारण बेवकूफ समझे जाते थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि यह बच्चा बडा होकर जरूर कोई नेता, फिलासफर, वैज्ञानिक या सैनिक जरनैल बनेगा। इसलिए वह सारे एक 'डेपूटेशन' लेकर रामू कुम्हार के पास पहुंचे, और उसे कहा कि वह इस बच्चे के पालन-पोषण पर पूरा-पूरा ध्यान रखे और इसे सामान्य गधो की तरह न समझे।

यह खबर धीरे-धीरे रामू के रिश्तेदारो मे फैल गयी। जिसको भी पता चला, वह पूरे का पूरा परिवार लेकर गधे के नवजात बच्चे के दर्शन करने को जाता। रामू की बेचारी बीवी को उनकी चाय बनाने से ही फुरसत न मिलती।

रिश्तेदारों से इस बात की भनक आम जनता को पड गयी, बस, फिर क्या था, अब तो रामू के घर के बाहर चौबीस घटे एक प्रकार का मेला लगा रहता। क्या नजदीक, क्या दूर के शहरों-गांवों मे से लोग पैदल, साइकिलों, कारों, मोटर-साइकिलों, स्कूटर, और टैक्सियो पर सवार होकर आते। चूंकि रामू के घर तक कोई सडक नही थी, इसलिए उनको अपनी कारें, टैक्सियां, मोटर-साइकिलें आदि गांव से बाहर ही

खड़ी करनी पड़ती। कई-कई जिज्ञासु रात के लिए ठहर भी जाते, जिससे गांव में खाने-पीने और रहने के प्रबंध की मुश्किलें पैदा होने लगी।

उस क्षेत्र के नेता को जब इस बात का पता चला, वह पदयात्रा करके इस विचित्र गधे के बच्चे के दर्शन करने के लिए आया। वहां विशेष जनसमूह को सम्बोधित करते हुए उसने सरकार से जोरदार शब्दों में माग की कि वह जनता की मुश्किलों को देखते हुए इस गाव की सडकों के जरिये बडे-बड़े शहरों के साथ जोड़े, और वहां से सीधी बसें इस गाव के लिए चलाये। साथ ही खाने-पीने और ठहरने के प्रबंध की मुश्किलों को देखते हुए सरकार को चाहिए कि सस्ते दामों पर जनता होटल चलाये। उसने यह भी कहा कि विधानसभा में भी वह यह प्रश्न उठायेगा।

वहां बैठे हुए कुछ सेठ किस्म के लोगों ने नेता जी की कृपा प्राप्त करने के लिए उसी समय स्टेज से ऐलान कर दिया कि वह लोगों की भलाई के लिए मुफ्त लंगर चलायेंगे। एक अन्य नेता ने स्टेज से कहा कि सारे काम सरकार पर ही नही डाल देने चाहिए, कुछ खुद भी करना चाहिए। इसलिए जल्दी ही यहां एक सराय बना लेनी चाहिए। आज अगर यहां सीगों वाला गधा जन्म ले सकता है, तो कल को कुतिया के पेट से शेर का बच्चा भी जन्म ले सकता है, उस समय हम क्या करेंगे? इस सामूहिक उद्यम का आरंभ उसने स्वय एक हजार एक रुपया देकर किया और उसके बाद न जाने कितने ही हजार रुपये पलक झपकते जमा हो गये। कई महाशयों ने यह भी कहा कि यह हमारे देशवासियों के लिए लज्जा की बात है कि इस अद्भुत गधे का स्वामी राम···नही, श्री रामदास दरिद्रावस्था में रहे। उसके लिए भी एक पक्के मकान की व्यवस्था होनी चाहिए। इस सामूहिक उद्यम के लिए भी काफी माया इकट्ठी हो गयी, जिसका हिसाब-किताब कभी किसी को पता न लग सका।

एक दिन एक बहुत बडे अखबार 'लोक-संग्राम' का संवाददाता भी आ गया। बड़ी अजीब बातें कर रहा था वह। कभी किसी को पूछता कि कभी पहले इस गांव में इस प्रकार हुआ है? कभी किसी को पूछता कि गधी कभी बारहसिंगे के साथ तो नहीं देखी गयी? इस बच्चे का महान्

सींगों वाला गधा

डा० मोनोजीत

□

बात बडी अजीब-सी हो गयी थी। रामू कुम्हार की गधी को प्रसूत हो गया था। गधियों को प्रसूत होता ही रहता है, पर इस गधी ने जिस बच्चे को जन्म दिया था, उसने पूरी गधा जाति के नाम को चार चांद लगा दिये थे—उस बच्चे के सिर पर सींग थे।

जब गधो को इस बात का पता चला, उनमे खुशी की लहर दौड गयी, क्योंकि इस गधे के बच्चे के सिर पर सींग थे, और बाकी गधे सींग न होने के कारण बेवकूफ समझे जाते थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि यह बच्चा बड़ा होकर जरूर कोई नेता, फिलासफर, वैज्ञानिक या सैनिक जरनैल बनेगा। इसलिए वह सारे एक 'डेपूटेशन' लेकर रामू कुम्हार के पास पहुंचे, और उसे कहा कि वह इस बच्चे के पालन-पोषण पर पूरा-पूरा ध्यान रखे और इसे सामान्य गधो की तरह न समझे।

यह खबर धीरे-धीरे रामू के रिश्तेदारों मे फैल गयी। जिसको भी पता चला, वह पूरे का पूरा परिवार लेकर गधे के नवजात बच्चे के दर्शन करने को जाता। रामू की बेचारी बीवी को उनकी चाय बनाने से ही फुरसत न मिलती।

रिश्तेदारो से इस बात की भनक आम जनता को पड गयी, बस, फिर क्या था, अब तो रामू के घर के बाहर चौबीस घंटे एक प्रकार का मेला लगा रहता। क्या नजदीक, क्या दूर के शहरों-गांवों मे से लोग पैदल, साइकिलो, कारों, मोटर-साइकिलो, स्कूटर, और टैक्सियों पर सवार होकर आते। चूकि रामू के घर तक कोई सडक नही थी, इसलिए उनको अपनी कारें, टैक्सियां, मोटर-साइकिलें आदि गाव से बाहर ही

खड़ी करनी पड़ती। कई-कई जिज्ञासु रात के लिए ठहर भी जाते, जिससे गांव में खाने-पीने और रहने के प्रबंध की मुश्किलें पैदा होने लगीं।

उस क्षेत्र के नेता को जब इस बात का पता चला, वह पदयात्रा करके इस विचित्र गधे के बच्चे के दर्शन करने के लिए आया। वहां विशेष जनसमूह को सम्बोधित करते हुए उसने सरकार से जोरदार शब्दों में मांग की कि वह जनता की मुश्किलों को देखते हुए इस गांव को सड़कों के जरिये बड़े-बड़े शहरों के साथ जोड़े, और वहां से सीधी बसें इस गांव के लिए चलाये। साथ ही खाने-पीने और ठहरने के प्रबंध की मुश्किलों को देखते हुए सरकार को चाहिए कि सस्ते दामों पर जनता होटल चलाये। उसने यह भी कहा कि विधानसभा में भी वह यह प्रश्न उठायेगा।

वहां बैठे हुए कुछ सेठ किस्म के लोगों ने नेता जी की कृपा प्राप्त करने के लिए उसी समय स्टेज से ऐलान कर दिया कि वह लोगों की भलाई के लिए मुफ्त लंगर चलायेंगे। एक अन्य नेता ने स्टेज से कहा कि सारे काम सरकार पर ही नहीं डाल देने चाहिए, कुछ खुद भी करना चाहिए। इसलिए जल्दी ही यहां एक सराय बना लेनी चाहिए। आज अगर यहां सींगों वाला गधा जन्म ले सकता है, तो कल को कुतिया के पेट से शेर का बच्चा भी जन्म ले सकता है, उस समय हम क्या करेंगे? इस सामूहिक उद्यम का आरंभ उसने स्वयं एक हजार एक रुपया देकर किया और उसके बाद न जाने कितने ही हजार रुपये पलक झपकते जमा हो गये। कई महाशयों ने यह भी कहा कि यह हमारे देशवासियों के लिए लज्जा की बात है कि इस अद्भुत गधे का स्वामी राम'''नहीं, श्री रामदास दरिद्रावस्था में रहे। उसके लिए भी एक पक्के मकान की व्यवस्था होनी चाहिए। इस सामूहिक उद्यम के लिए भी काफी माया इकट्ठी हो गयी, जिसका हिसाब-किताब कभी किसी को पता न लग सका।

एक दिन एक बहुत बड़े अखबार 'लोक-संग्राम' का संवाददाता भी आ गया। बड़ी अजीब बातें कर रहा था वह। कभी किसी को पूछता कि कभी पहले इस गांव में इस प्रकार हुआ है? कभी किसी को पूछता कि गधी कभी बारहसिंगे के साथ तो नहीं देखी गयी? इस बच्चे का महान्

बाप कहा है ? मैं उसका इंटरव्यू लेना चाहता हूं। लोगों ने उससे निवेदन किया कि गधों के बाप का भला कौन खयाल रखता है, पर उसने कहा, "इसका मतलब यह हुआ कि वह गधी आवारा थी ? उसका चाल-चलन ठीक नही था ?"

लोग भला क्या कहते, पर अपनी डायरी मे कुछ लिखता हुआ वह बडबडाया, "भई, हैरानी की बात है कि ऐसे लूज केरेक्टर वाली गधी ने इस विश्वख्याति पैदा करने वाले सुपुत्र को जन्म दिया है।"

लोक अभी भी धडाधड़ आ रहे थे। एक दिन बड़ी-बडी रंग-बिरगी गाडियो पर सवार कुछ सफेद गोरे लोग आ गये। उनके पास कई बडी मशीनें और कैमरे थे। गांव के सारे बच्चे उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये। उन्होंने रामू को बहुत-से रुपये दिये और कहने लगे, "हम विदेश से आये हैं, और इस बच्चे के बारे मे अपने देश के लोगो के लिए टी० वी० फिल्म बनाना चाहते हैं। रामू को भला क्या पता था कि टी० वी० क्या होता है ? पर वह रुपये देखकर चुप हो गया और वे आदमी कितनी देर तक उस बच्चे को बीच मे रखकर टी० वी० फिल्म बनाते रहे। कई बार वे मैले-कुचैले बच्चों को भी उसमें शामिल कर लेते। उन्होंने पूरे गांव की, गाव के मुखिया की, रामू की, रामू की बीवी की, मतलब यह कि सभी की तसवीरें लीं। बच्चे के बाप के बारे मे उन्होंने भी प्रश्न उठाया, पर उनको ज्यादा मुश्किल पेश न आयी, क्योंकि उन्होने आपस में विचार-विमर्श करके निश्चय कर लिया कि क्यों न गाव के सारे गधे फिल्म में शामिल कर लिये जायें और इस महान् प्रसिद्धि के लिए गांव के हर गधे को 'बेनीफिट आफ डाउट' दिया जाये ?

उनको वापिस गये हुए कुछ ही दिन हुए थे कि देश के एक महान् ज्योतिषी जी पधारे। वह यह देखना चाहते थे कि कहीं यह सींगो वाला गधा देश के लिए हानिकारक तो नहीं सिद्ध होगा। जिस गाव में लोगो को अपनी अगली आयु का भी पता नही था, जिस गाव मे लोग यह नही बता सकते थे कि उनके बच्चे कितने है, कितने हुए और कितने मर गये, उस गाव में भला उनको कौन इस गधे के बच्चे के जन्म का सही समय बताता ? भला लोगों को भी क्या पता था कि इस गधे के बच्चे को इतना प्रसिद्ध

जिनके प्रमोशन के चांस बढ़ गये थे, गधे की मुक्तकंठ से प्रशसा कर रहे थे ।

उधर अच्छी देखरेख में पलने के कारण उस गधे के बच्चे का स्वास्थ्य विश्व-रेकार्ड तोड़ता जा रहा था । वह अब शेर का बच्चा लगता था । जब वह शाम को सैर करने के लिए जंगल की ओर जाता, छोटे-मोटे जानवर तो एक ओर रहे, शेर, चीते, रीछ और भेड़िये आदि भी राह छोड़कर भाग जाते ।

ज्यों-ज्यों वह बड़ा होने लगा, रामू की चिंता भी बढ़ने लगी । अब गधे को देखने के लिए आने वाले लोगों का उत्साह भी कम हो गया था । कभी-कभी महीने में एकाध बार कोई थका-हारा आदमी आ जाता । रामू को लगा कि अब फिर उसे अपना पुराना धंधा ही आरंभ करना पड़ेगा, जिसके लिए उसे इस गधे की जरूरत पड़ेगी । यह गधा बीस गधों जितना काम करेगा, पर हाय ! ये उसे ले जायेंगे ।

उसका दिल बैठ जाता । वह सोचता, आखिर इस गधे में कौन-सी खास बात है ? सींग उग आने से यह आदमी तो नहीं बन गया; आखिर है तो गधा ही ।

अचानक उसके दिल में एक खयाल आया, "क्यों न यह गधा लेकर वह कहीं भाग जाये ?" वह स्कीमें बनाने लगा ।

देश के अखबार एक दिन सुर्खियों से भर गये, "वह अद्भुत गधा अपने मालिक समेत लापता हो गया है ।"

अखबारों में तरह-तरह के विचार प्रकट किये गये । कइयों ने यहां तक भी कह दिया कि गधे के लापता होने में किसी विदेशी सरकार का हाथ है । कइयों ने तो खुल्लम-खुल्ला सी० आई० ए० का नाम भी लिया । 'एक पूंजीवादी देश कैसे बर्दाश्त कर सकता है कि ऐसी अद्भुत वस्तु एक अविकसित देश के पास हो !'

कइयों ने तो यह भी आरोप लगाया कि सरकार ने स्वयं ही किसी समझौते के अधीन यह गधा किसी बाहरी देश को बेच दिया है । सभी का मत एक विकसित देश की ओर इशारा करता था, जिसका राष्ट्रपति अभी-अभी राजधानी में आया हुआ था ।

विरोधी पार्टियों ने भी जी भरकर सरकार का विरोध किया। विरोधी दल के नेता ने प्रधानमंत्री से मांग की कि उनकी सरकार त्यागपत्र दे दे। जो सरकार एक गधे की रक्षा नहीं कर सकती, वह देश की व्यवस्था कैसे चलायेगी ?

प्रधानमंत्री ने भर्राये स्वर में अफसोस प्रकट करने के बाद कहा कि ऐसी कोई बात नहीं, जिसके लिए उनकी सरकार त्यागपत्र दे।

फिर भी उन्होंने विरोधी नेता का मुख बंद करने के लिए ऐलान किया कि उनकी सरकार जल्दी ही एक कमीशन बैठायेगी, जो इस मामले की पड़ताल करेगा।

"जो भी इस मामले में दोषी पाया गया," उन्होंने कहा, "चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो, उसे कभी भी माफ नहीं किया जायेगा, सख्त सजा दी जायेगी।"

जिनके प्रमोशन के चांस बढ़ गये थे, गधे की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे थे।

उधर अच्छी देखरेख में पलने के कारण उस गधे के बच्चे का स्वास्थ्य विश्व-रेकार्ड तोडता जा रहा था। वह अब शेर का बच्चा लगता था। जब वह शाम को सैर करने के लिए जंगल की ओर जाता, छोटे-मोटे जानवर तो एक ओर रहे, शेर, चीते, रीछ और भेडिये आदि भी राह छोडकर भाग जाते।

ज्यो-ज्यो वह बडा होने लगा, रामू की चिंता भी बढने लगी। अब गधे को देखने के लिए आने वाले लोगों का उत्साह भी कम हो गया था। कभी-कभी महीने मे एकाध बार कोई थका-हारा आदमी आ जाता। रामू को लगा कि अब फिर उसे अपना पुराना धंधा ही आरभ करना पडेगा, जिसके लिए उसे इस गधे की जरूरत पडेगी। यह गधा बीस गधों जितना काम करेगा, पर हाय ! ये उसे ले जायेंगे।

उसका दिल बैठ जाता। वह सोचता, आखिर इस गधे मे कौन-सी खास बात है? सींग उग आने से यह आदमी तो नही बन गया; आखिर है तो गधा ही।

अचानक उसके दिल में एक खयाल आया, "क्यों न यह गधा लेकर वह कही भाग जाये?" वह स्कीमें बनाने लगा।

देश के अखबार एक दिन सुखियों से भर गये, "वह अद्‌भुत गधा अपने मालिक समेत लापता हो गया है।"

अखबारों मे तरह-तरह के विचार प्रकट किये गये। कइयों ने यहा तक भी कह दिया कि गधे के लापता होने में किसी विदेशी सरकार का हाथ है। कइयों ने तो खुल्लम-खुल्ला सी० आई० ए० का नाम भी लिया। 'एक पूंजीवादी देश कैसे बर्दाश्त कर सकता है कि ऐसी अद्‌भुत वस्तु एक अविकसित देश के पास हो !'

कइयों ने तो यह भी आरोप लगाया कि सरकार ने स्वयं ही किसी समझौते के अधीन यह गधा किसी बाहरी देश को बेच दिया है। सभी का मत एक विकसित देश की ओर इशारा करता था, जिसका राष्ट्रपति अभी-अभी राजधानी मे आया हुआ था।

विरोधी पार्टियों ने भी जी भरकर सरकार का विरोध किया। विरोधी दल के नेता ने प्रधानमंत्री से मांग की कि उनकी सरकार त्यागपत्र दे दे। जो सरकार एक गधे की रक्षा नहीं कर सकती, वह देश की व्यवस्था कैसे चलायेगी ?

प्रधानमंत्री ने भर्राये स्वर में अफसोस प्रकट करने के बाद कहा कि ऐसी कोई बात नहीं, जिसके लिए उनकी सरकार त्यागपत्र दे।

फिर भी उन्होंने विरोधी नेता का मुख बंद करने के लिए ऐलान किया कि उनकी सरकार जल्दी ही एक कमीशन बैठायेगी, जो इस मामले की पड़ताल करेगा।

"जो भी इस मामले में दोषी पाया गया," उन्होंने कहा, "चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो, उसे कभी भी माफ नहीं किया जायेगा, सख्त सजा दी जायेगी।"

कैनवस का भूत

डा० नरेश

□

खाली कैनवम के सामने बैठते ही मुझे लगा कि मेरी हथेली पर पड़े हुए रंग आपस में गडमड हो गये हैं। ठीक उसी प्रकार, जैसे कैनवस तक पहुंचते ही मेरी पत्नी की नजरों में बेबसी और मेरी बेकारी गडमड हो गयी थी। उसे पता था कि मैं चाय पिये बिना काम नहीं कर सकता, लेकिन वह कर भी क्या सकती थी? बच्चे दिन निकल जाने पर भी सोये पड़े थे। उनको जगाया नहीं गया था। सिर्फ इसलिए कि जगेंगे, तो चाय मांगेंगे, और आज घर में न चीनी थी और न चाय की पत्ती।

आखिर मेरे हाथों में ब्रुश चलने लगा। ब्रुश रंगों के साथ कैनवस का भूखा पेट भरने लगा। पहले लाल रंग की एक रेखा कैनवस के वक्ष पर उभरी। वही रेखा, जो मैंने सुहागरात के रोमांटिक माहौल में अपनी पत्नी की मांग में भरी थी। मैंने विवाह करवाने से पहले भी उसे कहा था कि शादी का रिश्ता प्यार की अजमत को फीका कर देगा। उसे बहुत समझाया कि बिना शादी किये भी हम दोनों दोस्तों की तरह रह सकते हैं—शायद सुखी भी। मेरी दलील थी कि सेक्स ही जिन्दगी नहीं है, और सेक्स पर आधारित रिश्ते ही रिश्ते नहीं हैं, पर उसने मेरी एक न सुनी। उसकी दलील मेरी भावनाओं से कहीं अधिक प्रबल थी।

"शादी मन की भूख न सही, तन की भूख तो मिटाती है।"

मैंने कहा था कि "यह बात अपने-आप में ही बहुत बड़ी बात है कि हम एक-दूसरे को प्यार करते हैं।"

पर उसकी दलील थी कि "मन के सम्बन्ध को शरीरों की लालसा का मोहताज क्यों रहने दिया जाये?"

मैं जानता था कि मैं एकआर्टिस्ट हूं—प्रोफेशनल् आर्टिस्ट नही, और मेरे लिए आर्ट को प्रोफेशन बनाकर जिन्दा रहना कठिन ही नही, असम्भव भी था पर मैं चाहते हुए भी अन्य कोई काम करने में असमर्थ था।

पर उसको मेरा मन भी चाहिए था, और मेरा तन भी। उस समय उसके सामने यह हकीकत नहीं खुली थी कि पेटकी आग को प्यार, भरपूर प्यार के साथ भी नहीं बुझाया जा सकता और पेट की जरूरतें पूरी करने के लिए आर्ट नही, जीने की आर्ट की जरूरत होती है, और मैं इस पक्ष की ओर से बिल्कुल कोरा था।

ब्रुश ने किसी ओर से काला रंग शुरू कर दिया था। कैनवस पर एक पतली-सी काली रेखा चमक उठी। ठीक वैसी रेखा, जो कुछ एक हसीन रातों के बाद हम दोनों के बीच उभर आयी थी। वह ठीक कहती थी, "तन की भूख को तन से बुझाया जा सकता है, मन से नहीं!" और इसी का परिणाम था कि आधा पेट भरते हुए भी हम दो बच्चों के माता-पिता बन गये थे।

ब्रुश कैनवस पर दौड़ता जा रहा था। रंग पर रंग चढ रहा था। अचानक दरवाजा खुला। मेरी पत्नी ने कमरे में प्रवेश किया! वह पड़ोस के किसी घर से चायकी पत्ती और चीनी उधारले आयी थी। हां, उधार, और यह उधार कभी वापस नही चुकाया जाना था। पर उसे तो चाय की समस्या हल करनी थी, और वह किसी भी प्रकार हल कर ली थी। चाय, जिसकी उसके पति को जरूरत थी, उसके बच्चो को भी जरूरत थी। बच्चे जाग चुके थे। उनका कौओं जैसा शोर मेरे कमरे तक पहुंच चुका था।

लेकिन कैनवस पर नजर पड़ते ही वह चौंक पड़ी। उसके हाथ से प्याली छूटकर फर्श पर गिर पड़ी चाय की बदनसीब प्याली, जिसको वह स्वयं न पीकर मेरे लिए ले आयी थी। वह पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी कैनवस की ओर देख रही थी। कुछ क्षणों की बोझिल खामोशी के बाद वह सहमकर पूछने लगी, "यह भूत क्यो बनाया है कैनवस पर?"

मैंने गौर से कैनवस की ओर देखा। मेरी उंगलियों ने सचमुच ही किसी भूत का सृजन कर दिया था। भूत, जिसको बेचारगी का भूत कहा जा सकता था। भूत, जो दांत पीसता हुआ मेरी ओर देखे जा रहा था,

लेकिन मेरी पत्नी की परेशानी मेरे लिए असहनीय थी। चेहरे पर जबर-दस्ती मुस्कराहट लाते हुए मैंने कहा, "तुम डर गयी हो ?...यह तो कैनवस का भूत है।"

और एक क्षण के लिए अपनी कमर के गिर्द मेरी बांहों का आलिंगन महसूस करके वह गुमसुम-सी हो गई।

मां ! पुलिस वाले के घर मत ब्याहना

नूर संतोखपुरी

□

मैं बड़े मजे से सोया हुआ एक बहुत ही बढ़िया सपना देख रहा था कि अचानक मेरी पत्नी ने मुझे झंझोड़कर जगा दिया। मैंने आंखें मलते हुए पूछा, "क्या मुसीबत आ गई है ?"

"भगवान के लिए दौड़कर जाओ। बेचारे बिशन को जाकर छुड़ाओ।" मेरी पत्नी घबराई हुई बोली।

"उसे सुबह-सुबह किसने पकड़ लिया है ?" मैं अभी भी बिस्तर में लेटा हुआ करवटें बदले जा रहा था।

"एक ही तो है, जिसके हाथ वह अक्सर आ जाता है। उसकी मोटी पत्नी कुलच्छनी उसको बेलन से पीटे जा रही है। कोई डर के मारे करीब नहीं जाता। बेचारे का बहुत बुरा हाल हो रहा है। इस मरजानी मोटी को जरा भी तरस नहीं आता बिशन को पीटते हुए। बाकी पत्नियां भी जरा संभलकर पीटती हैं अपने पति-परमेश्वर को, लेकिन यह कमबख्त ...उठो भी नहीं तो फिर देखना..." मेरी पत्नी ने मुझे बांह पकड़कर यों खड़ा कर दिया, जैसे दीवार के साथ चारपाई खड़ी करते हैं।

मैंने झटपट पैरों में चप्पल पहनी और बिशन के घर में जा घुसा। जाकर देखा, तो उसकी मोटी पत्नी ने उसको बालों से पकड़ रखा था और बेलन से उसकी मरम्मत कर रही थी।

"क्या बात हो गई भाभी ? सुबह-सुबह हाथ गर्म करने लगी हो।" मैं थोड़ा-सा उसके करीब पहुंच गया। मुझे देखकर उसने बिशन को छोड़ दिया। वह भागकर मेरे पास आकर खड़ा हुआ। बेचारे की सांस फूल रही थी। यों भी यह हड्डियों का पिंजर ही तो था। पत्नी की मार खाकर

[illegible] यह किसी ऐरे-गैरे के बस की बात नहीं थी। [illegible] तो ही बेलन की मार सहन की जा सकती है।

[illegible] पूछ इस भाड़ में जाने वाले को। यह सुबह-सुबह सोये हुए किस सिमरो का स्मरण कर रहा था ?" उसकी पत्नी ने आंखों को और लाल करते हुए कहा।

"क्या मतलब ?" मैंने बिशन की ओर देखा।

"मुझे तो खुद नहीं मालूम। मैं तो सोया हुआ था कि यह मुझे बालों से पकड़कर पीटने लगी। मुझे कारण पूछने का मौका ही नहीं दिया।" बिशन अभी भी हांफ-हांफकर बातें कर रहा था।

"मैं बताती हूं अच्छी तरह से !" उसकी घरवाली हमारे निकट आते हुए बोली। बिशन खिसककर थोड़ा-सा उससे और दूर हो गया।

"अगर यह मरजाना सोये हुए बेगानी औरतों के नाम जपता रहता है, तो दिन में बाहर न जाने क्या-क्या कुकर्म करता होगा !" उसकी पत्नी का गुस्सा अभी भी उबल रहा था। अगर मैं उस समय वहां न होता, तो उसने बिशन को फिर पकड़ लेना था। मैंने सोचा, इस कुलच्छन के साथ बेकार में किसलिए माथा-पच्ची की जाये ! मैं बिशन की बांह पकड़कर बाहरी दरवाजे की ओर चल दिया। दहलीज लांघते समय मैंने पीछे मुड़कर देखा तो बिशन की पत्नी अभी भी माथे पर बल डाले खड़ी थी।

एक सुरक्षित-सी जगह देखकर हम दोनों बैठ गये।

"तुझे आज फिर यह किसलिए पीटने लगी थी ?" मैंने बिशन से पूछा।

"नूर, तुझे भी पता है। जब पत्नी का मूड पति को पीटने के लिए उबल रहा हो, तो वह कोई न कोई बहाना ढूंढ ही लेती है। और साथ ही इसने जब भी मुझे पीटा, कभी कारण नहीं बताया। अब तो रोज मार खाने की बजाय... मैं कहीं डूब मरना चाहता हूं। मुझसे अब इसकी मार झेली नहीं जाती। अब मेरी हड्डियों में पहले जैसा दम नहीं रहा।" बिशन बिसूरने लगा।

"कोई बात नहीं, फिर क्या हुआ ? तुझे किसी बेगानी औरत ने थोड़े

पीटा है। तेरी अपनी पत्नी ने पीटा है। न रो मेरे भाई। मैं तेरे दुःख को अच्छी तरह समझता हूं।" मैं उसको चुप कराने की कोशिश करने लगा। बिशन चुप कर गया। मैं भी कुछ नहीं बोला। हम दोनों के बीच इस प्रकार खामोशी छा गयी, जैसे हम किसी का मातम मना रहे हों।

"वह किसी सिमरो के बारे में कह रही थी।" मैंने खामोशी भंग करते हुए कहा।

"हमारे भाग्य में यही लिखी हुई थी। इसके बिना तो हमने कभी किसी बिल्ली की तरफ आंखें भरकर नहीं देखा।" बिशन कहने लगा।

"इसका मतलब यह कि हर बार तुझे यह बहाने ढूंढ़कर पीटती है?"

"और क्या?"

"साले! तेरी किस्मत ही कसाई के बकरे जैसी है। कोई इसमें क्या कर सकता है?"

"रोज-रोज मार खाने से एक दिन सोये हुए का गला ही घोंट दे, अगर मैं इसे अच्छा नहीं लगता।" बिशन भावुक होकर बोला।

"अगर तू मर गया, तो वह अपना चस्का कैसे पूरा किया करेगी?"

"यही रोना तो मैंने विवाह से पहले बेबे के सामने रोया था कि भई, मेरा यहां रिश्ता न करो। इसका बाप भी पुलिस में है, और इसके तीनों भाई भी! पुलिस वालों की थोड़ी-बहुत आदतें इसमें भी होगी। पुलिस खानदान की लड़की के साथ इश्क करना भी बुरा···फिर इसकी तो सारी उम्र की गुलामी रहेगी। पर बेबे (मां) कहने लगी, 'काका, पुलिस वालों के साथ रिश्तेदारी करनी अच्छी रहेगी। तेरे बापू और भाइयों को आये दिन पुलिस के साथ काम पड़ता रहता है। अगर तेरा रिश्ता पुलिस वालों के साथ हो जाये तो तुम आसानी से शराब, चरस और अफीम बेच सकते हो। फिर कोई परेशानी नहीं रहेगी।"

"बस नूर, बेबे के फंसाये हुए फंसे बैठे हैं, नहीं तो इस चुड़ैल को कौन पूछता था?"

बिशन अब कुछ-कुछ हलका-फुलका महसूस कर रहा था। उसने अपना दुःख मेरे सामने प्रकट कर लिया था, लेकिन मैं अपना रोना उसके सामने अभी तक नहीं रो सका था। अपनी पत्नी का चेहरा आंखों के सामने

आते ही मैं एकदम उठ खड़ा हुआ। बिशन मेरी ओर मुटुर-मुटुर देखने लगा।

"क्या बात है ? चल पड़ा है ?"

"हां यार मुझे अब जाने दे। इतनी देर न जाने कैसे मैंने घर से बाहर समय बिता लिया है ? पता नहीं, तेरी भाभी दरवाजे पर घोंटना लिये खड़ी होगी। मेरे ससुर ने दहेज मे अन्य तो कोई चीज नही दी, केवल नीम का एक मजबूत घोटना उसने अपनी लड़की को जरूर दिया था।"

मैं इतना कहकर अपने घर की ओर चल दिया। घर को जाते हुए मैं डर रहा था''''हे ईश्वर तुम ही हमारे परदे ढंककर रखना।' इतने मे यही आवाज कानों में पड़ी, "बस, यों समझ लो कि फिर तुम्हारा नूर सुबह नूर के तडके तक घर से बाहर नहीं निकल पायेगा !"

लेखक-परिचय

प्यारा सिंह दाता : जन्म १५ जुलाई १६१० । पंजाबी के वयोवृद्ध और प्रमुख हास्य-व्यंग्य लेखक । कई पुस्तकें प्रकाशित । प्रमुख पुस्तकें हैं : नमक का पहाड़, नया रेडियो, आकाशवाणी, जिंदा शहीद । पंजाबी में एकमात्र हास्य-व्यंग्य पत्रिका 'नवां साहित' के प्रकाशक एवं सम्पादक हैं । भाषा विभाग, पटियाला द्वारा एक वृहत् ग्रन्थ 'प्यारा सिंह दाता और उनका हास्य-व्यंग्य' हिन्दी में प्रकाशनाधीन है ।

डा० गुरनाम सिंह तीर : पंजाबी के प्रमुख व्यंग्यकार । नाटक, कविताएं भी लिखीं । अनेक पुस्तकें प्रकाशित । अपने प्रकार की अनूठी हास्य-व्यंग्य पुस्तक 'मुझे मुझसे बचाओ' अधिक चर्चित । पंजाबी पत्रिका 'अजीत' जालन्धर में एक हास्य कालम 'चाचा चण्डीगढ़' कई वर्षों से छप रहा है ।

सूबा सिंह (स्व०) : कविता, कहानी, गद्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में खूब लिखा । प्रसिद्ध पुस्तकें हैं—हीर, अलोप हो रहे चेटक, आग और पानी तथा जहरीले हासे ।

शेरजंग जांगली : यह इंग्लैंड से निकलने वाली एक पंजाबी पत्रिका के संपादक हैं और वहीं रहते हैं । इन्होंने राजनीतिक व्यंग्य अधिक लिखे हैं । चार पुस्तकें : झुरझुर, उस्ताद कलमतोड़, अलादीन गोरा जिन्न, तमाशा जरकी दा छप चुकी हैं ।

अनंत सिंह काबुली : पंजाबी पत्रिका 'मोहाली' के संपादक हैं । कई पुस्तकें छप चुकी हैं । प्रमुख है : उरला-परला ।

[illegible] बलबीर [illegible] (स्व०) : कुछ समय पूर्व इनका देहान्त हो गया। मूल-रूप से नाटककार थे। लगभग साठ पुस्तकें पंजाबी मे लिखी।

रामलाल नामवी : उर्दू, हिन्दी और पंजाबी तीन भाषाओं में हास्य-व्यंग्य रचनाएं लिखते हैं। तीनों भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएं छपी हैं। कई पुस्तकें प्रकाशित।

के० एल० गर्ग : जन्म—१३ अप्रैल १६४३; शिक्षा—एम० ए० (हिन्दी और अंग्रेजी)। तीन कहानी संकलन—वोट ६६, आग के दायरे, तलव दा रिश्ता; दो हास्य-व्यंग्य-संग्रह—देख कबीरा हंसा, खरियां-खोट्टियां; एक उपन्यास—दरअसल प्रकाशित।

जगदीश प्रसाद कौशिक : डेढ़ हजार के लगभग लेख, कविताएं, व्यंग्य नाटक आदि लिख चुके हैं। पंजाबी में हास्य-व्यंग्य की एक पुस्तक 'मुखौटे, छप चुकी है।

दलीप सिंह भूपाल : हास्य-व्यंग्य, लेख और कविताएं लिखीं। व्यवसाय—अध्यापन। कई पुस्तकें छप चुकी हैं। प्रमुख हैं—बाबे तारे, चार चक्क, ग्रहिणे सूरज, चुस्कियां, गजरेलियां, आकाशवाणियां।

दलीप सिंह जुनेजा : जन्म—जनवरी १६४२; शिक्षा—एम० ए०, एम० एड०। प्रकाशित पुस्तकें—छिलतरां, अक्क दे फुल्ल, तजवीज प्रवान हो।

जसवंत सिंह कंलवी : जन्म—१ नवम्बर १६३६; शिक्षा—एम. ए., एम० एड०। व्यवसाय—अध्यापन। प्रकाशित पुस्तकें हैं—रीझां दे फुल्ल, विश्वास दे रंग, धुप्प ते तारे।

निरंजन शर्मा सेखा : प्रमुख व्यंग्य लेखक। दो पुस्तकें—सुगंधिका और कच्च दे टुकड़े छप चुकी हैं।

जगदीश सिंह : शिक्षा—एम. ए. (हिन्दी)। व्यवसाय—अध्यापन। अनेक हास्य-व्यंग्य पंजाबी और हिन्दी की पत्रिकाओं में छप चुके हैं।

डा० नरेश, डा० मोनोजीत कुलदीपसिंह चेतनपुरी, एम० के० राही फिरोजपुरी, तख्तसिंह कोमल और बलबीर सिंह रंना : ये नई पीढ़ी के लेखक हैं जिनकी रचनाएं पंजाबी पत्र-पत्रिकाओं में लगातार छप रही हैं।

• • •

श्री सुरजीत

इस पुस्तक के संकलनकर्ता और संपादक हैं सुरजीत। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी मे एम० ए० किया है और पिछले छब्बीस वर्ष से निरंतर उर्दू, पंजाबी, और डोगरी से अनुवाद कर रहे हैं और मौलिक लेखन भी। उनकी सहस्रों मौलिक व अनूदित रचनाएं हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं—यथा धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, नवनीत, कादम्बिनी, आजकल, नई कहानियां, कहानी, दैनिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, दैनिक ट्रिब्यून, रविवार, नन्दन, पराग, लोटपोट, आदि मे छप चुकी हैं। हिंदी में लगभग पचास पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन मे आंगन, उर्दू की आखिरी किताब, कुत्ते की दुम, सितारे चहचहाते हैं, जमीन, चटकारे, गोरख-धंधा, राष्ट्रीय जूता, होशियार-खबरदार, शिकार-नामा, शिकार की रोमांचकारी कहानियां, आप से मिलिये, ऐवाने-गजल आदि विशेष चर्चित हैं।

सम्पर्क—सी-34, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली-15

फोन : 538533